गगनाञ्चल

वर्ष ११ अंक २ १९८८

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नयी दिल्ली

प्रकाशक

ललित मानसिंह, महानिदेशक,
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद,
नयी दिल्ली-११०००२

संपादक
गिरिजा कुमार माथुर

प्रकाशन सहायक
डॉ. अमरेंद्र मिश्र

आवरण
कांतिराय

मुद्रक :
एस.बी. प्रिंटर्स, बी-१७, सेक्टर ८ नौएडा

शुल्क दरें

एक अंक	वार्षिक	त्रैवार्षिक
रु० ५.००	रु० २०.००	रु० ५०.००
£ १.००	£ ४.००	£ १०.००
$ २.५०	$ १०.००	$ २५.००

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन है। भारत व अन्य देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंधों एवं पारस्परिक सद्भाव को स्थापित तथा संपुष्ट करने के उद्देश्य से १९५० में परिषद की स्थापना की गयी थी। भारत तथा दूसरे देशों के मध्य इस सांस्कृतिक संवाद के उद्देश्य से आयोजित अपने प्रकाशन कार्यक्रम में परिषद अन्य गतिविधियों के अतिरिक्त त्रैमासिक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित करती है जो हिंदी (गगनाञ्चल), अंग्रेजी (इंडियन हराइज़न्स, अफ्रीका क्वार्टरली), अरबी (सक़ाफ़त-उल-हिंद), स्पेनिश (पपेलस-दे-ला-इंडिया) और फ्रेंच (रकौंत्रा अवेक लैंद) भाषाओं में है। हिंदी, अंग्रेजी, अरबी, स्पेनिश और फ्रेंच त्रैमासिकों की शुल्क दरें साथ दी हुई हैं। 'गगनाञ्चल' के शुल्क के भुगतान से संबंधित पत्र-व्यवहार और प्रकाशन सामग्री के लिए संपादक 'गगनाञ्चल' से निम्नलिखित पते पर संपर्क किया जाना चाहिए :

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नयी दिल्ली-११०००२

गगनाञ्चल

वर्ष ११, अंक २, १९८८

गयाना में भारतवंशियों के डेढ सौ वर्ष पूरे होने पर
विशेष सामग्री

पुण्य-स्मृति

श्रद्धांजलि

कहानी

हिंदी कहानी की विकास-यात्रा

कविताएँ

संस्कृति

पुस्तकें

गोष्ठी रपट

पत्र-पत्रांश

संस्मरण

गयाना के वे दिन

यशपाल जैन

'क्या रक्खा है उन देशों में? इतनी लंबी यात्रा करके वहाँ पहुँचोगे और पाओगे क्या? अरे, जितने दिन वहाँ बिताओगे, उतने दिन यहाँ कैनेडा-अमरीका में खर्च करोगे तो कितना देखने और कितना सुनने को मिलेगा।'

यह पता चलने पर कि मेरे लिए कैरेबियाई देशों (सूरीनाम, गयाना और ट्रिनीडाड एण्ड टोबेगो) से बुलावा आया है, टोरेंटो (कैनेडा) में, जहाँ मैं अपने लड़के सुधीर के पास गया हुआ था, कई मित्रों ने मुझे यह सलाह दी। यद्यपि उन्हें दक्षिण अमरीका से सटे उन देशों में जाने का कभी अवसर नहीं मिला था, तथापि उन देशों, मुख्यत: गयाना से आकर टोरेंटो में बसे भारतीयों से वे बहुत कुछ सुन चुके थे। विकास के उच्च शिखर पर आसीन कैनेडा और अमरीका की तुलना में उन देशों को नगण्य माना जाना स्वाभाविक था, पर मेरे लिए तो भारतीय-बहुल देशों की यात्रा तीर्थयात्रा के समान थी। अफ्रीका के अनेक देशों का भ्रमण करने के उपरांत मैं पहला भारतीय लेखक था, जो सन् १९६५ में मारीशस और फीजी हो आया था। हिंदी के यशस्वी लेखक और पत्रकार स्व. बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखी अनुबंधित भारतीय श्रमिक पं. तोताराम सनाढ्य की आप बीती 'फीजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' पुस्तक को पढकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये थे। दक्षिण प्रशांत महासागर की गोद में बसे फीजी द्वीपसमूह की परिक्रमा करते हुए मेरी आंखों के सामने वह लोमहर्षक इतिहास घूम गया था, जो किसी बड़े-से-बड़े देश के इतिहास से कम महत्वपूर्ण नहीं था। इसी प्रकार हिंद महासागर में मोती के जैसे चमकते मारीशस के ईख और धान के लहलहाते खेतों को देखकर मुझे उन भारतीय मज़दूरों के खून-पसीने का स्मरण हो आया था, जिन्होंने डेढ़ सौ वर्ष पूर्व उस धरती को शस्यश्यामला बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी और आज जिसके निर्माण का बहुत कुछ श्रेय भारतवंशियों को है।

इसके अतिरिक्त दोनों ही देशों में बसे प्रवासी भारतीयों के हृदयों में भारत तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम, गहन निष्ठा और अविकल भक्ति की त्रिवेणी में अवगाहन कर मैंने बड़ी धन्यता अनुभव की थी।

उसी श्रृंखला में अब भारत की सीमा से हज़ारों किलोमीटर दूर वे देश जुड़ने वाले थे, जिनमें करार में बंधे असंख्य भारतीय श्रमिक आज से डेढ़ सौ वर्ष भंयकर स्थितियों से जूझने के लिए ले जाये

गये थे और अब जिनके वंशजों ने उनकी धरती को मालामाल करने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी।

सूरीनाम से मुझे भारत के तत्कालीन सांस्कृतिक अधिकारी श्री महातम सिंह की ओर से निमंत्रण मिला था। गयाना से 'महात्मा गाँधी आर्गेनाइजेशन' की ओर से, जिसके महासचिव वहाँ के विख्यात समाजसेवी डॉ. बलवंत सिंह थे ट्रिनीडाड एण्ड टुबेगो से भारत के सांस्कृतिक अधिकारी प्रो. हरिशंकर 'आदेश' ने आमंत्रित किया था। इनमें से महातम सिंह और आदेश दिल्ली में कई बार मुझसे मिल चुके थे। बलवंत सिंह से पत्र-व्यवहार द्वारा मेरा परोक्ष परिचय था। कहने की आवश्यकता नहीं कि मित्रों की निराशाजनक राय के बावजूद मैंने वहाँ के निमंत्रणों को स्वीकार कर लिया था और बड़े ही रोमांचित मन से वहाँ जाने की तैयारी में जुट गया था।

टोरेंटो से मैं एयर कैनेडा के विमान से न्यूयार्क पहुँचा। वहाँ से पैन अमेरिका का जहाज पकड़ा। सफर बड़ा लंबा था। पर मौसम बढ़िया होने के कारण अखरा नहीं। जहाज यात्रियों से पूरी तरह भरा था।यात्रियों में अधिकांश आप्रवासी भारतीय थे। उन्हें भारत के संबंध में कोई जानकारी नहीं थी। वे केवल इतना जानते थे कि उनके पूर्वज़ भारत से आये थे।

कई घंटे की, बिना कहीं रुके, उड़ान के बाद हमारा जहाज पोर्ट ऑफ स्पेन पर उतरा, जो ट्रिनीडाड एण्ड टुबेगो की राजधानी है। वहाँ कुछ देर रुक कर हम एक घंटे में गयाना की राजधानी जार्जटाउन के हवाई अड्डे पर पहुँचे। वहाँ ४५ मिनट ठहरकर एक घंटे में सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो के हवाई अड्डे पर पहुँच गये। महातम सिंह को मैंने अपने पहुँचने की तिथि और विमान की सूचना टोरेंटो से दे दी थी। अत: मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जब मैंने देखा कि वहाँ के प्रमुख भारतीय बड़ी संख्या में हवाई अड्डे पर उपस्थित हैं। विमान की सीढ़ियाँ उतरते ही भारतीय वेशभूषा में एक महानुभाव ने वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुए माल्यार्पण द्वारा मेरा स्वागत किया। तत्पश्चात् हवाई अड्डे के विशिष्ट स्वागत कक्ष में ले जाकर मुझे पुष्पमालाओं से लाद दिया।

मेरी यात्रा का श्री गणेश सूरीनाम से ही होना था। वहाँ एक सप्ताह रुककर गयाना और अंत में ट्रिनीडाड जाना था। इन तीनों देशों में जो समय व्यतीत करने का अवसर मिला, उसकी बड़ी ही मधुर स्मृतियाँ आज भी मेरे मानसपटल पर अंकित हैं। यद्यपि इन सभी देशों में रहने वाले भारतीयों के जीवन पर पश्चिमी आचार-विचार, वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान आदि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, तथापि उनका अंतर आज भी अपने पूर्वजों के देश भारत की संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, कला, संगीत इत्यादि के साथ बड़ी गहराई से जुड़ा है। मैं वहाँ एक लेखक के रूप में गया था। मेरा क्षेत्र मुख्यत: साहित्य और संस्कृति था। अत: सभी पक्षों ने और सभी क्षेत्रों ने मेरा दिल खोलकर स्वागत और अभिनंदन किया। प्रत्येक देश में संगोष्ठियाँ की, सार्वजनिक सभाओं के आयोजन किये, स्कूल-कॉलेजों में मेरे भाषण कराये, धर्म-स्थलों में मुझे बोलने का सुयोग दिया, लेखकों से मिलाया, हिंदी के केंद्रों के वार्षिक अधिवेशन करके छात्र-छात्राओं को प्रमाण-पत्र दिलवाये, रेडियो तथा दूरदर्शन पर अनेक वार्त्ताएं तथा प्रसारण कराये और विभिन्न ऐतिहासिक और प्राकृतिक सौंदर्य के स्थलों की यात्रा कराई। उस सबका उल्लेख एक लेख में करना संभव नहीं है। इस लेख में मैं अपना ध्यान मुख्य रूप से गयाना पर केंद्रित करुंगा।

गयाना दक्षिण अमरीका के उत्तर-पूर्व में एक किनारे पर अवस्थित छोटा-सा गणतंत्र देश है। इसके उत्तर में अतलांतिक महासागर हिलोरें लेता है, पश्चिम में वैनेजुला है, दक्षिण-पश्चिम में ब्राजील और पूर्व में सूरीनाम है। इसका क्षेत्रफल २,१५,००० वर्ग किलोमीटर और आबादी लगभग ८,००,००० है। अधिकांश बसावट अतलांतिक महासागर की तंग तटीय पट्टी पर पाई जाती है। शेष

भूमि निर्जन है।

गयाना का इतिहास बड़ा रोमाचंकारी तथा उथल-पुथल से परिपूर्ण रहा है। उसके तट को सर्वप्रथम क्रिस्टोफर कोलम्बस ने सन् १४७८ में देखा था, किंतु उस बीहड़ भूमि पर न तो यातायात की संभावना थी, न अन्य कोई आकर्षण था। अत: स्पेन और पुर्तगाल-वासियों की उसमें दिलचस्पी नहीं हुई। अंततोगत्वा डच, फ्रेंच और अंग्रेज वहाँ आये और उन्होंने उपनिवेश स्थापित करने के प्रयत्न किये, परंतु इन्हें अपने प्रयत्नों में सफलता नहीं मिली। आपसी लड़ाइयाँ होतीं रहीं। तत्पश्चात् बनों और नदियों के उस क्षेत्र में तीन उपनिवेश बने। अंग्रेजों का उपनिवेश 'ब्रिटिश गयाना' कहलाया, डचों का 'डच गयाना' और फ्रांसीसियों का 'फ्रेंच गयाना'। इनमें से स्वतंत्र होने के पश्चात् ब्रिटिश गयाना 'गयाना' के नाम से विख्यात हुआ और डच गयाना को 'सूरीनाम' की संज्ञा दी गई। इन दोनों देशों में भारतीय मूल के लोगों की संख्या लगभग ५० प्रतिशत है।

पर भारतीय यहाँ आये कैसे? इसकी कहानी अत्यंत रोमांचकारी तथा मर्मस्पर्शी है।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, इन प्रदेशों की भूमि एकदम बीहड़ थी। उस पर घने जंगल और दलदल थे। उसे खेती के योग्य बनाने के लिए मजबूत और मेहनती मजदूरों की आवश्यकता थी। इस काम को गोरे लोग नहीं कर सकते थे। अत: अफ्रीका से नीग्रो लोगों को लाया गया। उन्हें दास बनाकर रखा गया और उनके साथ अत्यंत अमानुषिक व्यवहार किया गया। फिर भी वे लोग अपना पसीना बहाते रहे और धरती को खेती-बाड़ी के काम की बनाने के लिए प्रयत्न करते रहे। लेकिन उनके साथ होने वाले अनाचारों और अत्याचारों की कहानियाँ दूर-दूर तक फैली और दास-प्रथा के विरुद्ध ऐसा वातावरण बना कि ब्रिटेन को अपने उपनिवेशों में दास-प्रथा को समाप्त करने के लिए संसद में एक विधेयक पारित करना पड़ा। फलत: अगस्त १८३८ को सब प्रकार की दासता का अंत हो गया।

हवा के रुख को देखकर सन् १८३४ और १८३८ के बीच प्रयास किया गया कि मैडीरा से श्रमिकों को आयातित किया जाय और वैस्टइंडीज़ से कुछ आबादी की बदली गयाना कर दी जाय, लेकिन यह प्रयास सफल नहीं हो सका। दास-प्रथा से मुक्त होने के बाद अपनी सेवाओं को देते रहने के लिए नीग्रो लोग किसी भी कीमत पर राज़ी नहीं हुए।

तब जॉन ग्लैड्स्टन ने ४ जनवरी १८३६ को एक पत्र कलकत्ता की एक फर्म को लिखा, जिसमें यह बताते हुए कि श्रमिकों के लिए गयाना में कितनी संभावनाएँ हैं, पूछा कि क्या वह कुछ मज़दूर भारत से भेज सकेगी। इस पत्र का बड़ा उत्साहवर्द्धक उत्तर आया। फिर भी काफी उहापोह के बाद पाँच साल के करार में बांधकर भारतीय श्रमिकों को वहाँ बुलाने का निश्चय किया गया।

इस निश्चय के अनुसार पहला जहाज व्हिटबी भारत से १३ जनवरी १८३८ को रवाना हुआ और ५ मई १८३८ को गयाना पहुँचा। दूसरा जहाज हैसपरस २९ जनवरी १८३८ को कलकत्ता से रवाना होकर ५ या ६ मई १८३८ को गयाना पहुँचा। दोनों जहाज़ों पर ४१४ श्रमिक थे। इन श्रमिकों को विभिन्न स्थानों पर काम पर लगा दिया गया, लेकिन पूरी मेहनत से काम करते हुए भी उन्हें जो यातनाएँ भुगतनी पड़ीं, उनका हाल पढ़कर रोम-रोम कांप उठता है। बिना किसी अपराध के मामूली बातों पर उन्हें खंभों से बांधकर उनकी नंगी पीठ पर कोड़े बरसाये जाते थे, उनका अपमान किया जाता था।

कुछ लोग तो भारत से यहाँ आते-आते ही जहाज़ पर मर गये थे, कुछ यहाँ मालिकों के अत्याचार के शिकार हुए। किंतु जो बचे उन्होंने अपने धैर्य को नहीं छोड़ा और घोर परिश्रम करके वहाँ की धरती को हरा-भरा बनाने का अथक प्रयत्न किया।

इतिहास के इन पृष्ठों को समझना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि बिना इन्हें समझे विगत डेढ़ सौ वर्षों के भारतवंशियों के त्याग और तपस्या को भली प्रकार नहीं जाना जा सकता। आज वहाँ पर भारतीय संस्कृति, धर्म और भाषा का महत्व है तो उसका मूल कारण यही है कि अनुबंध के दिनों में भारतीय श्रमिकों नेअपनी संस्कृति, धर्म और भाषा के बीज बड़े गहरे बो दिये थे। अनुबंध की मियाद पूरी हो जाने के उपरांत जो लोग वहाँ रह गये, उन्होंने, और बाद में उनके वंशजों ने उन बीजों को बड़े परिश्रम और निष्ठा से सींचा। परिणामत: वे आज सघन वृक्षों के रूप में विकसित होकर अपनी छाया से न केवल भारतीय समाज को शीतलता प्रदान कर रहे हैं, अपितु अन्य धर्मावलंबियों को भी लाभान्वित कर रहे हैं। वहाँ का राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक आदि कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसमें भारतवंशियों ने अपना बहुमूल्य योग न दिया हो और आज भी न दे रहे हों। जिस प्रकार आकाश से होने वाली वर्षा के जल को पृथ्वी सोख लेती है और फिर मिट्टी और पानी को अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार उस देश पर भारतीयों द्वारा प्रवाहितधर्म और संस्कृति की धारा को वहाँ के लोकजीवन ने अपने में समाहित कर लिया है।

हाल ही में गयाना में भारतीयों के प्रथम आगमन की स्मृति में डेढ़ सौवीं, वर्षगांठ बडी धूमधाम से मनाई गई थी। उसमें भाग लेने के लिए भारत के उपराष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा वहाँ गये थे। उनके साथ सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए अनेक भारतीय कलाकार भी गये थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अनुष्ठान ने विगत डेढ़ सौ वर्षों के उतार-चढ़ावों से भरे इतिहास को सजीव कर दिया था।

मुझे अपनी यात्रा के रंग-बिरंगे चित्र आज भी याद आते हैं। यद्यपि मुझे वहाँ की 'महात्मा गाँधी एसोसियेशन' ने आमंत्रित किया था, किंतु कतिपय कारणों से मेरी सारी व्यवस्था भारतीय उच्चायुक्त ने भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा कराई। सांस्कृतिक संबंध परिषद् के तत्कालीन अधिकारी श्री योगी राज शास्त्री मेरे साथ रहे। वहाँ पहुंचते ही मेरे कार्यक्रम आरंभ हो गये। इतने कार्यक्रम हुए कि मुझे पता भी न चला कि एक सप्ताह कब निकल गया।

गयाना धर्मनिरपेक्ष राज्य है, फिर भी सब धर्मों को वहाँ पूर्ण स्वतंत्रता है। आप किसी भी नगर या देहात में, चले जाइये, आपको हिंदू मंदिर, वैदिक संस्थान, मस्जिद, गिरजे और सामूहिक प्रार्थना केंद्र दिखाई देंगे। अधिकांश भारतीय पूजागृहों के साथ छोटे-छोटे स्कूल हैं, जहाँ हिंदी और उर्दू की पढ़ाई होती है। राज्य की भाषा वैसे अंग्रेजी है, और उसी का सारे देश में बोलबाला है, फिर भी आपसी बातचीत में हिंदी का भी थोड़ा-बहुत चलन है। भारतीय संगीत तथा नृत्य आदि के भी कुछ केंद्र हैं।

जिन-जिन देशों में भारतीय गये हैं, उन-उन देशों में 'आर्य समाज' की स्थापना अवश्य हुई है। गयाना इसका अपवाद नहीं है। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा बाल-कल्याण के लिए आर्य समाज वहाँ अच्छा कार्य कर रही है। वेदों के सार्वभौमिक रूप को प्रस्तुत करने तथा मानव-समाज के बीच नैतिक मूल्यों की स्थापना करने के लिए 'आर्य प्रतिनिधि सभा' का जन्म हुआ। उसके अंतर्गत आर्य वीर-दल, आर्य महिला सभा, आर्य प्रचारक मण्डल और वैदिक अनुसंधान परिषद महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। 'हिंदू धार्मिक सभा' की भूमिका भी कम मूल्यवान नहीं है।

होली, दिवाली तथा अन्य पर्व-त्यौहार वहाँ बड़े उत्साह से मनाये जाते हैं। जिस प्रकार मारीशस में महाशिव-रात्रि के महान पर्व के अवसर पर आयोजित गंगा सागर की यात्रा में वहाँ के सारे धर्मावलंबी-हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि— सम्मिलित होते हैं, उसी प्रकार गयाना में हिंदू पर्वों को, विशेषकर होली-दिवाली को, सभी धर्मों के लोग मिलजुलकर मनाते हैं।

मेरी यात्रा का आरंभ हिंदी के स्कूलों के निरीक्षण से आरंभ हुआ। वहाँ पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं

से मैं मिला, अध्यापकों से भेंट की, उनकी अध्यापन-विधि देखी, छात्रों से कुछ सुना, कुछ सुनाया, लेकिन हिंदी की जो गति और प्रगति मुझे सूरीनाम में दिखाई दी, वह गयाना में दिखाई नहीं दी। वहाँ पर हिंदी की पाठ्यपुस्तकों की बड़ी कमी थी। पाठ्य पुस्तकों की ही क्यों, सामान्य हिंदी पुस्तकों का अभाव भी मुझे दीख पडा। वहाँ के हिंदी -प्रेमियों तथा धर्म में रुचि रखने वाले लोगोा ने बताया कि वे क्या करें? भारत में प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओं के पुस्तकों का आदेश की आपूर्ति नहीं करते। उत्तर तक नहीं देते। जो गिने-चुने लोग पुस्तकें भेज भी देते हैं तो पुस्तकें इतनी देर से पहुंचती हैं कि हम भूल जाते हैं कि हमने कभी उनका आर्डर दिया था। इस दिशा में भारत को और प्रमुख प्रकाशकों को गंभीरता से सोचना चाहिए। भारत लौटकर मैंने सस्ता साहित्य मण्डल की प्राप्य पुस्तकों का एक सैट वहाँ भेंट स्वरूप भिजवाया।

धार्मिक प्रवृतियाँ देखने के लिए मुझे कई हिंदू मंदिरों में ले जाया गया। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वहाँ के हिंदू राजनेता धर्म से बचते नहीं है। शासन में मत्री के पद पर होते हुए भी कुछ लोग मंदिरों में पुरोहित का कार्य करते हैं और उसमें उन्हें कोई संकोच नहीं होता, उल्टे गर्व का अनुभव करते हैं। एक मंदिर में मुझे आमंत्रित किया गया। वहाँ सत्यनारायण की कथा हो रही थी। मुझे बड़ा विचित्र-सा लगा, जब मैंने देखा कि कथा का पाठ मूल भाषा में हो रहा था और उसकी व्याख्या अंग्रेजी में की जा रही थी। मेरे पहुँचने पर कथा को रोक दिया गया, मेरा अभिनंदन किया गया और अंत में मुझसे अंग्रेजी में बोलने को कहा गया। ऐसी ही स्थिति एक बार टौरेंटो (कैनेडा) के 'हिंदू प्रार्थना समाज' के मंदिर में हुई थी। वहाँ अधिकतर गयाना-निवासी श्रोता थे। वहाँ भी मुझे अंग्रेजी में ही बोलना पड़ा था। यदि भारत के कुछ हिंदू विद्वान वहाँ जाकर बसें और इस स्थिति को बदलने का प्रयत्न करें तो शायद कुछ हो सकता है।

गयाना के भूतपूर्व प्रधानमंत्री डॉ. छेदी जगन से, जो भारतवंशी हैं, मिलने की मेरी बड़ी इच्छा थी। वह इच्छा पूर्ण हुई। हम लोगों की बातचीत उनके छोटे-से निवास-स्थान पर १ घंटा २० मिनट चली। डॉ. छेदी जगन साम्यवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित हैं। सात वर्ष प्रधानमंत्री रहे और अब विपक्ष के नेता हैं। इस विषय मे मेरे मन में बड़ी जिज्ञासा थी। मैंने उनसे प्रश्न किया, 'डॉ. जगन, क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि महात्मा गांधी के निर्देशन में भारत ने जिस निर्भीकता से स्वतंत्रता को प्राप्त कर अपना अधिकार हस्तगत किया, आपने गांधी विचाराधारा या उनके मार्ग को क्यों नहीं अपनाया?'

उन्होंने मेरे प्रश्न को टाला नहीं। बिना संकोच के बोले, 'देखिये, गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने अंतरिम सरकार का गठन न करके, शासन को अपने हाथ में न लेकर, पूर्व स्वतंत्रता के बाद चुनाव की शर्त रखकर जो बुद्धिमत्ता दिखाई, उसी में हम चूक कर गये। हमने पूर्ण स्वतंत्रता के बिना ही अंतरिम सरकार बनाकर जो भूल की, उसको अब तक सुधार नहीं सके। अंतरिम सरकार के दिनों में हमारे हाथ में कुछ भी नहीं था, फिर भी हमने अपनी नीतियाँ घोषित कर दीं, किंतु उन नीतियों को हम निभा नहीं सकें।'

वहाँ की राजनीति मे मेरी दिलचस्पी न होते हुए भी मैंने उनसे कहा कि यदि आप पांच वर्ष तक राजनीति से अलग रहकर रचनात्मक कार्य करें, जैसा कि गांधीजी ने राजनीति में लिप्त न होकर अपने रचनात्मक कार्यों द्वारा किया तो इस देश की अपूर्व सेवा होगी और आपके हाथ मजबूत होंगे।

मेरे इस कथन पर छेदी जगन मुस्करा उठे। बोले, 'जैन जी, आप पांच वर्ष की बात करते हैं, आज राजनीति से एक दिन के लिए भी अलग होना संभव नहीं है।'

महात्मा गांधी ऑर्गेनिज़ेशन के विशाल सभागार में हुई सार्वजनिक सभा मुझे बार-बार याद आती है। सभागार खचाखच भरा था। सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्रों के संभ्रांत स्त्री-पुरुष बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे। भारतीय उच्चायुक्त तथा सरकार के कई मंत्री आये थे। कुरता, धोती और जाकेट पहने जब मैंने सभागार में प्रवेश किया तो सारा हाल तालियों की गड़गड़ाहट से देर तक गूंजता रहा। मेरा परिचय दिया गया। अपने भाषण का आरंभ मैंने हिंदी में किया, अनंतर यह अनुभव करके कि श्रोता हिंदी भली प्रकार समझ नहीं पायेंगे, मैं अंग्रेजी में सवा घंटे बोला। भारतीय स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि और गांधजी के योगदान पर प्रकाश डालते हुए मैंने कहा, 'गांधीजी के लिए स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं था कि शासकों की कुर्सी पर से विदेशी लोग हट जायें और भारतीय बैठ जायें। यह तो होता ही, किंतु गांधीजी, की स्वराज्य की कल्पना यह थी कि भारत स्वतंत्र होकर मानव-जाति के कल्याण के लिए कार्य करें।'

गांधी जी के सिद्धांतों की सार्वभौमिक सार्थकता समझाते हुए मैंने आगे कहा, 'गांधीजी ने सर्वोदय की कल्पना की। भारत की स्वतंत्रता तो इस सर्वोदय की पहली कड़ी थी। इस सर्वोदयी विचारधारा के कारण गाधीजी किसी एक देश के नेता न होकर, समूची मानव-जाति के नेता थे। उनकी विचारधारा का संबंध विश्व के सभी देशों और सभी पद-दलित जातियों के उत्थान और उनके उदय से है, चाहे वह अमरीका के मार्टिन लूथर किंग के रूप में सामने आवे, या आप लोगों में से किसी के रूप में आपके देश में उभरे। गांधीजी की यह विचारधारा संसार के बड़े देशों की पारंपरिक समरांगण की प्रतिस्पर्द्धा को मिटाकर उन्हें शांति-समन्वय के साथ रहने का मार्ग दिखाती है।'

भाषण को श्रोताओं ने अत्यंत मनोयोगपूर्वक सुना। मैंने पाया कि भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों के जो विशिष्ट व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे, उनकी गांधीजी तथा उनकी विचारधारा में गहरी अभिरुचि थी। समारोह की अध्यक्षता कीन्स कॉलेज के प्रिंसिपल ने की।

इन कार्यक्रमों के बीच डमरारा रेडियो ने १५ मिनट का इंटरव्यू लिया, 'गयाना ग्राफिक' पत्र ने भी भेंटवर्ता की, जिसे उसने सचित्र प्रकाशित किया, और भी कई कार्यक्रम किये। उन सब में मुझे बुकर्स स्टोर में मार्टिन कार्टर नामक राष्ट्रकवि से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। विदेशी सत्ता के दिनों में वह जेल गये। बाद में मंत्री बने। बड़ी निश्च्छलता से बोले, 'मंत्री बनने पर लेखन में बड़ी बाधा पड़ती थी।इसलिए मैंने मंत्रित्व छोड़ दिया। अब आजीविका के लिए इस स्टोर में काम करता हूँ।' उन्होंने कई कविताएँ सुनाईं। बड़ी अच्छी लगीं। उनमें जीवन की गहराई थी।

भारतीय उच्चायुक्त ने विभिन्न भारतीय संस्थाओं के अधिकारियों को मुझसे मिलाने के लिए अपने निवास पर एक पार्टी की। काफी लोग आये। उन्होंने वहाँ की वर्तमान स्थिति का यथार्थ पचिय देते हुए इस बात पर ज़ोर दिया कि वहाँ के भारतीय समाज की और अधिक संगठित होना चाहिए। उन्होंने यह भी बताया कि अधिकांश भारतीय, कृषक और नौकरपेशा होने के कारण, भारतीय संस्कृति, धर्म-अध्यात्म आदि के प्रचार-प्रसार में रुचि होते हुए, भी, अधिक समय नहीं दे पाते। उन्होंने अपनी कठिनाइयों को बताने में संकोच नहीं किया। इससे मुझे जहाँ हर्ष हुआ, वहाँ भारतवंशियों की आज की मानसिकता को समझने में भी सहायता मिली।

कुछ समय मैंने वहाँ के ऐतिहासिक तथा प्राकृतिक स्थलों को देखने को निकला। शाम को समुद्र-तट पर घूमते हुए, वहाँ की प्राकृतिक सुषमा देखकर जो आनंद मिला, वह वर्णनातीत है। प्रातः सायं वहाँ सैलानियों की खूब भीड़ हो जाती है और आपको एक प्रकार से एक ही स्थान पर सारे देश का दर्शन हो जाता है।

वहाँ के निवासियों की एक विशेष मांग थी। उनका कहना था, 'हम चाहते हैं कि भारत के साथ

हमारे संबंध और प्रगाढ़ हों। आप जाकर भारत सरकार से कहिए कि वह न्यूयार्क से यहाँ तक एयर इण्डिया की वायुयान-सेवा चालू कर दें।' लौट कर मैंने इस दिशा में प्रयत्न किया, किंतु अभी सफलता नहीं मिली।

वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों का आग्रह था कि मैं उनके यहाँ कम-से-कम एक महीना रुकूं, पर वह मेरे लिए संभव नहीं था। मेरा ट्रिनीडाड का कार्यक्रम निश्चित हो गया था और वहाँ मेरी प्रतीक्षा की जा रही थी।

आखिर जाने का समय आ गया। भारतीय समाज के अनेक गण्यमान्य व्यक्ति मुझे हवाई अड्डे पर छोड़ने आये। सात दिन में उनके साथ इतना आत्मीयता का नाता जुड़ गया था कि हम सबके दिल भरे थे, आंखे तरल थीं। बड़ी आत्मीयता से वे कह रहे थे कि अगली बार आवें तो जाने की जल्दी मत मचाइये।

विदाई का वह प्रेम से छलछलाता दृश्य आज भी मेरे मन को विभोर कर देता है।

□

गयाना में भारतवंशी

नारायण कुमार

विश्व-विख्यात नाविक कोलम्बस ने १४९८ में दक्षिण अमरीका के इस उत्तर-पूर्वी तट को देखा था जिसे बाद में संसार स्वर्ण द्वीप (एल-डोराडो) के रूप में जानने लगा। चूँकि इस क्षेत्र में काफी नदियां थीं और अपार जल-भंडार था इसलिए इसे 'गाइना' कहा जाने लगा जो एक अमरीइंडियन शब्द है, जिसका अर्थ होता है—अनेक जलराशियों का देश। यह वाइना से निकला हुआ शब्द है जो आज भी अमरीइंडियन लोगों के बीच पानी का पर्याय है। इस स्वर्ण द्वीप की तलाश में कोलम्बस के बाद भी अनेक नाविक आए लेकिन उन्हें हमेशा प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पडा। अब तक उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार १५९३ में सर वाल्टर रैले एलिजाबेथ साम्राज्य के विस्तार के लिए इस क्षेत्र में आए थे और उन्होंने अपने अनुभवों को 'डिस्कवरी ऑफ लार्ज, रिच एंड ब्यूटीफुल एंपायर ऑफ गयाना' नाम से प्रकाशित कराया। बाद में अंग्रेजी के अनेक साहित्यकारों ने गयाना की समृद्धि और सौंदर्य का वर्णन अपनी रचनाओं में किया। इन रचनाकारों में शेक्सपियर, मिल्टन, हडसन तथा कॉनन डॉयल के नाम उल्लेखनीय हैं। ८३,००० वर्गमील के इस भूभाग में १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से १९वीं शताब्दी के प्रारंभ तक स्पेन, डच, फ्रेंच तथा ब्रिटिश उपनिवेश वादियों के आपसी संघर्ष चलते रहे। अंततः १८०३ में ब्रिटेन ने इस क्षेत्र के एक बड़े भाग पर स्थायी तौर से अपना अधिकार जमा लिया तथा १८१४ में बरबिस, एसिक्यूबो और डेमरारा पर उनका कब्जा हो गया। इन तीनों प्रांतों को मिलाकर १८३१ में ब्रिटिश गयाना उपनिवेश की स्थापना हुई। उस समय तक ब्रिटिश गयाना के गन्ने के खेतों में अफ्रीकी नीग्रो काम करते थे, जो दास प्रथा के अंतर्गत गयाना आए थे। उनके नारकीय जीवन की कहानी मानवता के इतिहास में एक शर्मनाक घटना बन चुकी थी। दास-प्रथा की निर्ममता एवं क्रूरता के प्रति ब्रिटेन में विरोध उभरा तथा १८३४ में ब्रिटिश सरकार ने दास-प्रथा को समाप्त करने की घोषणा कर दी।

दास प्रथा की समाप्ति की घोषणा के बाद गयाना के बागान-मालिकों के समक्ष मजदूरों की समस्या पैदा हो गई क्योंकि नीग्रो लोग अपने को स्वतंत्र समझने लगे। उसी समय एप्रेंटिशशिप नामक प्रावधान लागू किया गया जिसके तहत १८३८ तक नीग्रो मजदूरों को दास बनकर काम करना पड़ा। इस बीच बागान मालिकों ने वेस्टइंडीज तथा मेडेइरासे संविदा के आधार पर मजदूर मंगवाना शुरू किया जो गयाना के खेतों में काम करने में सफल नहीं रहे। अंततः इस उपनिवेश के ब्रीडेन-हूप तथा ब्रीडस्टेन नामक बागानों के मालिक जॉन ग्लैडर्स एंड कंपनी को भारत से गयाना में मजदूरों को भेजने की

संभावनाओं के बारे में पूछा। उस फर्म ने ग्लैडस्टोन को लिखा कि हम नहीं सोचते कि वेस्टइंडीज में यहाँ से मजदूरों को भेजने में कोई कठिनाई पैदा होगी क्योंकि यहाँ के लोगों को तो यह मालूम ही नहीं होगा कि वे कहाँ जा रहे हैं तथा उन्हें कितनी लंबी यात्रा करनी है? ग्लैडस्टोन ने ईस्ट इंडिया कंपनी के अध्यक्ष सर जॉन कैम हॉनहाउस को २३ फरवरी १८३७ को तथा ब्रिटेन के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर द कॉलोनिज लार्ड ग्लेनेलज को मार्च १८३७ मे पत्र भेजकर भारत से मजदूरों के आयात की अनुमति ले ली।

कलकत्ता की फर्म ने ग्लैडस्टोन को जो उत्तर भेजा उससे जाहिर होता है कि मजदूरों को यह साफ-साफ नहीं बताया जाता कि वे कहाँ और कितनी दूर जा रहे हैं! लेकिन इतना सच है जो लोग भारत से बाहर जा रहे थे वे अपने मन में बेहतर भविष्य का सपना सँजोए हुए थे और इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हर प्रकार की चुनौतियों का सामना करने को तैयार थे। इन अज्ञात महापुरुषों की अंतहीन यातना की यात्रा १८३८ की मकरसंक्रांति या पोंगल के दिन १३ जनवरी को शुरू हुई जबकि व्हिटबी नामक जहाज कलकत्ता से २४९ श्रमिकों को लेकर चला। ठीक उसके १६ दिन बाद २९ जनवरी को १६५ श्रमिकों को लेकर हेसपरस नामक जहाज गयाना गे विदा हुआ। ४१४ यात्रियो में से १८ की मृत्यु यात्रा के दौरान हो गई थी। अत: शेष ३९६ मजदूरों को लेकर दोनों जहाज ५ मई १८३८ को गयाना पहुँचा। इन मजदूरों में १५० की भर्ती छोटानागपुर के आदिवासी इलाके से की गई थी जिन्हें अंग्रेज 'हिल कुली' कहते थे तथा बाकी मजदूर बर्दवान और बांकुरा जिले से आये थे।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने शर्तबंद प्रथा के नाम से दासता को ही पुनरुज्जीवित किया। इन भारतीय मजदूरों पर भी वे उसी प्रकार अत्याचार और अनाचार करने लगे जैसे की नीग्रो गुलामों पर करते थे। फर्क इतना ही था कि भारतीय मजदूर गुलाम नहीं कहे जाते थे। भारत में इन बागान मालिकों ने कुछ भर्ती एजेंट नियुक्त कर लिया था जो मामूली कमीशन पाने के लिए दूर-दराज के इलाकों का प्रलोभन देकर भर्ती डिपो में लाते थे तथा इन द्वीपों में भेज देते थे। १८३८ से लेकर १९१७ तक भारत से २,३९,००० से भी अधिक लोग शर्तबंद मजदूर के रूप में गयाना आए। इन मजदूरो को अक्सर सूर्योदय से सूर्यास्त तक काम करना पड़ता था। उन्हे अनुबध की शर्तों के अनुसार न तो वेतन मिलता था न अन्य सुविधाएँ। यह एक सर्वमान्य सच था कि इन शर्तबंद मजदूरों के लिए सिर्फ तीन जगहें हैं—खेत-जहाँ वे दिन-रात मालिकों के लिए काम करें, अस्पताल-जहाँ से दवा-दारू के बिना बीमार पड़े रहें तथा जेल-जहाँ बिना किसी अपराध के कठोर सजा पाते रहें।

गयाना के विख्यात स्वतंत्रता सेनानी तथा प्रथम प्रधानमंत्री डॉ. छेदी जगन ने 'द वेस्ट ऑन ट्रायल' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि ''बागान अपने आप में एक अलग संसार था। सच माने में वहाँ दो संसार थे—एक शोषकों का संसार और दूसरा शोषितों का। श्वेत शासकों का संसार और अश्वेत मजदूरों का संसार। शानदार अट्टालिकाओं में रहनेवाले यूरोपीय अधिकारियों और प्रबंधकों का संसार तथा नीग्रोयार्ड सा कुलीयार्ड की लोजियों में रहनेवाले श्रमिकों का संसार। अधिकारियों को महलनुमा मकानों में बिजली की चमचमाती रोशनी तथा मजदूरों के घर में किरासन की टिमटिमाती दुनिया होती थी। यहाँ तक कि मजदूरों की तुलना में खच्चरों के साथ भी बेहतर बर्ताव किया जाता था क्योंकि खच्चरों से अस्तबल में बिजली की व्यवस्था होती थी।''

इन तमाम क्रूर एवं अमानवीय व्यवहारों के विरोध में समय-समय पर भारतीय मजदूरों ने अपने आक्रोश व्यक्त किए। लेकिन उपनिवेश के कड़े कानूनों ने इन मजदूरों की आवाज को कैद कर रखा था। मजदूरों की शिकायतों को सुनने के लिए इमीग्रेशन-एजेंट का पद तो बना दिया गया था लेकिन मजदूर अपने बागान से २ मील से आगे जा नहीं सकते थे ताकि इमीग्रेशन-एजेंट से वे अपनी फरियाद सुना

सकें। क्रॉसबी नामक एक उदारमना इमीग्रेशन-एजेंट को जब इस बात की सूचना मिली तो वे स्वत: विभिन्न बागानों में जाकर मजदूरों से मिलते थे तथा बागान मालिकों को उनकी गलती के लिए सजा देते थे लेकिन गयाना के तत्कालीन गर्वनर को क्रॉसबी की यह उदारता अच्छी नहीं लगी तथा उसके अधिकारों पर इतना अंकुश लगा दिया कि वे गवर्नर की आज्ञा के बिना अपने दफ्तर से बाहर कहीं भी नहीं जा सकते थे। भारतीय मजदूरों ने क्रासबी की न्यायप्रियता के कारण उस दफ्तर को 'क्रॉसबी ऑफिस' नाम दे दिया चाहे उस पद पर कोई अन्य अधिकारी ही क्यों न हो। आज भी वह भवन गयाना में 'क्रॉसबी-दफ्तर' के नाम से जाना जाता है।

१८५७ में भारत में आजादी की पहली लड़ाई जब शुरू हुई तो उसकी खबर गयाना पहुँचने में देर नहीं लगी। १८५७ के बाद सासाराम, मेरठ, कानपुर, झाँसी से बहुत ऐसे लोग गयाना आए जिनके खिलाफ भारत में गिरफ्तारी के आदेश तथा पुलिस उनकी तलाश कर रही थी। वे दलाल के बहकाने पर भर्ती डिपो में नहीं गए थे वे पुलिस की गिरफ्तारी से बचना चाहते थे। वे राजनीतिक समझवाले व्यक्ति थे जिन्होंने गयाना पहुँचकर भारतीय मजदूरों को अन्याय एवं दमन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रोत्साहित किया। भारतीय मजदूर भी बर्दाश्त की सीमा को पार कर चुके थे। उनमें सिर्फ राजनीतिक चेतना जगानी थी। अत: उन्होंने मालिकों एवं पुलिस अधिकारियों का छिटपुट विरोध शुरू किया जिसे सख्ती से कुचल दिया गया। अधिकारियों तथा मालिकों की इस कार्रवाई ने आग में घी डालने का काम किया। पूरे देश के मजदूरों के मन में विद्रोह की ज्वाला धधकने लगी जिसकी लपट सर्वप्रथम गयाना के एकसक्यूबो प्रांत के डेवनशायर क्रॉसल में सितंबर १८७२ में फैली।

डेवनशायर कासल के गंदे और छोटे मकानों में पशुओं के समान रहनेवाले मजदूरों को हर रोज १२ से २० घंटे तक फार्म या फैक्टरियों में काम करना होता था जोकि उनके अनुबंध में सहमत शर्तों के खिलाफ था। ज्यादा समय तक काम करने के लिए उन्हें कोई अतिरिक्त राशि भी नहीं मिलती थी। वहाँ के मजदूरों ने इस प्रकार के शोषण को समाप्त कराने के कई शांतिपूर्ण प्रयास किए। अनेक आश्वासनों के बावजूद जब कोई नतीजा नहीं निकला तो मजदूरों ने हँसिया और लाठी लेकर प्रदर्शन शुरू कर दिया। इन प्रदर्शनकारियों में बिहार के प्रयाग नामक एक मजदूर पर वहाँ के मैनेजर को पीटने का आरोप लगाया गया। जब इस मामले की सुनवाई हो रही थी तो प्रयाग ने जाँच मजिस्ट्रेट के सवालों के जवाब देने से इनकार कर दिया क्योंकि सुनवाई के समय बागान का मैनेजर भी मजिस्ट्रेट के साथ ही बैठा था। इस बीच प्रदर्शनकारी मजिस्ट्रेट के दफ्तर के पास पहुँच गए थे तथा जब मैनेजर के साथ मजिस्ट्रेट अपने दफ्तर से बाहर निकले तो प्रयाग ने उसके खिलाफ मैनेजर द्वारा लगाए गए आरोपों की जांच जनता के सामने करने की मांग की। प्रदर्शनकारी प्रयाग के खिलाफ निराधार आरोप से उत्तेजित हो उठे थे तथा उन्होंने मांग की, कि मैनेजर और बागान के ओवरसीयर को तत्काल नौकरी से हटा दिया जाय। मजिस्ट्रेट के यह कहने पर कि कानूनी कार्रवाई की जाएगी मजदूरों ने कहा कि उन्हं कानून में विश्वास नहीं है'' ।इस प्रदर्शन का सूत्रपात उन मजदूरों ने किया था जो १८५७ के सिपाही विद्रोह यानी भारतीय आजादी की पहली लड़ाई में हिस्सा ले चुके थे। अत: मजिस्ट्रेट के आदेश के बावजूद वे वहाँ से नहीं हटे। मौके की तलाश में बैठी पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर अंधाधुंध गोलियां चलाई जिसमें अनेक लोग घायल हुए। तथा अकलू, बलदेव, कालिया, बेकारु और मक्सद अली शहीद हो गए। गोलियों की आवाज सुनते ही वहाँ की महिलाएँ भी छाती पीटती हुई तनी बंदूकों के सामने खड़ी हो गई तथा इस अत्याचार के खिलाफ आवाज बुलंद करती रहीं। इन पाँच मजदूरों की शहादत ने गयाना के शोषितों के मन में एक नई चेतना जगाई। १८७२ से ही पूरे उपनिवेश में एक राजनीतिक नव जागरण की शुरूआत हुई जिसके कारण ब्रिटिश सरकार को आदेशों एवं अध्यादेशों के जरिए शर्तबंद मजदूरों की दशा सुधारने

पर ध्यान देने के लिए विवश होना पड़ा।

डेवनशायर कासल के विद्रोह के बाद मजदूरों ने उसी साल स्केलडन तथा आवलॉट में अपने विरोध व्यक्त किए। १८९३ से १८९६ के बीच हड़ताल तथा प्रदर्शन की प्रक्रिया जोर पकड़ती गई। इन चार वर्षों में भारतीय मजदूरों ने पीटर्स हॉल, डिकेड्रियन, फ्रेंडस, केनग्रोव, लेवनारा, सक्सेस, लेगुआन आदि के बागानों में अपने मैनेजरों तथा मालिकों का जमकर विरोध किया। मजदूरों की एकता को तोड़ने में विफल मालिकों एवं मैनेजरों के लिए दमन के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। उनके दमन-चक्र के दो शर्मनाक उदाहरण १३ अक्टूबर १८९६ को नॉनपेरियल में तथा ६ मई १९०३ को बरबिस के प्लांटेशन फ्रेंडस में देखने को मिला। नॉन पेरियल के मजदूर जब अपनी मजदूरी में कमी के खिलाफ फरियाद लेकर अधिकारियों के पास पहुँचे तो उनके कुछ साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया। अपने साथियों को छुड़ाने के लिए कृतसंकल्प मजदूरों को पुलिस की गोलियां विचलित नहीं कर सकीं तथा इस प्रदर्शन के दौरान पाँच व्यक्ति मारे गये तथा पचास घायल हुए। ६ मई १९०३ को प्लांटेशन फ्रेंडस में भी छः व्यक्तियों को मार डाला गया तथा अनेक घायल हुए।

इसी प्रकार लुजिगनान में १८ सितंबर १८८२ को भारतीय मजदूरों ने वहाँ के बागान के मैनेजर आर.इ. ब्रासिंगटन के दुर्व्यवहार से तंग आकर उसकी कोठी का घेराव किया तथा घर की बिजली और टेलीफोन के तारों को काट दिया। उसके घर से चलाई गई गोली में ननकू नामक मजदूर मारा गया। ननकू के शव को एक खटिया पर रखकर गवर्नर हाउस लाया गया जहाँ गयाना के गवर्नर ने प्रदर्शनकारियों के नेताओं से बातचीत की तथा दोषी व्यक्ति को सजा दिलाने का आश्वासन दिया। श्री ब्रासिंगटन को ननकू की हत्या के लिए अदालत ने दोषी ठहराया लेकिन जूरी के सदस्यों ने उसे दोष मुक्त साबित कर दिया। गयाना के प्लांटेशन रोज हॉल में जनवरी १९१३ में, रूइमवेल्ट में मार्च १९२४ में तथा लेवनारा में फरवरी १९३९ में भारतीय मजदूरों ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए जमकर संघर्ष किया और अपने जीवन का बलिदान देकर देश में आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया।

१९४७ में भारत की आजादी के बाद गयाना में रहनेवाले भारतीय श्रमिकों के मन में एक नया आत्मबल पैदा हुआ। गयाना की राजधानी जार्जटाउन सहित देश के कोने-कोने में भारतीय स्वतंत्रता समारोह आयोजित किए गए। विभिन्न फार्मों में काम करनेवाले भारतीय मजदूर संगठित होकर अपने अनुबंध की शर्तों पर जोर देते रहे। गयाना की राजधानी जार्जटाउन से २५ मील दूर इनमोर सुगर स्टेट के मालिकों ने १९४८ के प्रारंभ में ही 'गन्ना काटो और लादो' नामक नया कानून बनाया जिसका वहाँ के श्रमिकों ने जमकर विरोध किया क्योंकि उन्हें जो मजदूरी मिलती थी वह गन्ना काटने के लिए थी न कि किसी वाहन पर उसे लादने के लिए। इस विरोध-प्रदर्शन को प्रसिद्ध श्रमिक नेता डॉ. जे.पी. लक्ष्मणसिंह तथा डॉ. छेदी जगन सहित अनेक राजनीतिक नेताओं ने अपना समर्थन दिया और उसे स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष के रूप में आगे बढ़ाया। इस बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना को ब्रिटिश उपनिवेशवादी बर्दाश्त नहीं कर सके तथा १६ जून १९४८ को उनकी पुलिस ने इनमोर के प्रदर्शनकारियों पर अंधाधुंध गोलियां चलाईं जिसमें पूरन, सूरजबाली, रामबरन, हरि और लालाबाजी शहीद हुए। उनकी शहादत ने गयाना की आजादीके आंदोलन का सूत्रपात किया। गयानावासियों के स्वतंत्रता संघर्ष को आंशिक सफलता १९५३ के चुनाव में मिली जबकि नए संविधान के तहत बालिगमताधिकार के आधार पर उपनिवेश में चुनाव हुआ जिसमें डॉ. छेदी जगन तथा फार्बस बर्नहम के नेतृत्व में गयाना की पीपुल्स प्रोग्रेसिव पार्टी को २४ में से १८ स्थानों पर सफलता मिली। डॉ. जगन गयाना के प्रधानमंत्री चुने गये। लेकिन साढ़े ४ महीने बाद ही संविधान को निलंबित करके डॉ. जगन सहित उनकी पार्टी के अनेक

नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। १९५७ में चुनाव होने तक अंतरिम सरकार शासन चलाती रही। डॉ. छेदी जगन तथा बर्नहम जातीय आधार पर अलग-अलग खेमे में बंट गए फिर भी १४ में से ९ स्थानों पर डॉ. छेदी जगन के गुट को बहुमत मिला। इसी प्रकार १९६१ में भी डॉ. जगन के नेतृत्व में पीपुल्स प्रोग्रेसिव पार्टी विजयी रही तथा मुख्य विरोधी दल के रूप में बर्नहम द्वारा गठित पीपुल्स नेशनल कांग्रेस उभरकर सामने आई। डॉ. छेदी जगन को उनके विरोधियों ने साम्यवादी विचारधारा का व्यक्ति कहा लेकिन डॉ. जगन पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत रहे। अंग्रेजों ने २६ मई १९६६ को गयाना को स्वतंत्र घोषित कर दिया जो बाद में १९७० में एक पूर्ण गणराज्य बन गया।

गयाना के आर्थिक विकास में भारतीय मूल के लोगों का योगदान महत्वपूर्ण तथा महान है। कृषि, उद्योग, व्यापार में तथा कुछ हद तक उच्च पदों पर भारतमूल के लोग विद्यमान हैं। वे १५० वर्ष पहले पूर्वजों द्वारा भारत से आई संस्कृति, परंपरा एवं रीति-रिवाज का अब भी अनुसरण कर रहे हैं। यहाँ की ७,९०,००० की जनसंख्या में भारतमूल के लोग बहुमत में हैं। लेकिन उनमें राजनीतिक सजगता का अभाव है। वे अपनी इस कमी को सांस्कृतिक एवं धार्मिक अनुष्ठानों से पूरा करना चाहते हैं। इसलिए भारतीय भाषा एवं वेशभूषा भूल जाने के बावजूद गयाना में भारतीय धर्म और संस्कृति जीवंत है।

गयाना की विभिन्न सांस्कृतिक एवं धार्मिक संस्थाएं देश भर में भारतीय धर्म, परंपरा एवं संस्कृति का प्रचार कर रही हैं। इस क्षेत्र में भारतीय उच्चायोग तथा भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है जहाँ संगीत, नृत्य, तबला, शहनाई तथा हिंदी की नियमित कक्षाएँ चलाई जाती हैं। गयाना के भारतीय मूल के लोगों ने भारतीय संस्कृति की छवि को अपने मन में ही संजोकर नहीं रखा है बल्कि यहाँ की धरती पर उसे इस प्रकार स्थापित किया है कि यह गयाना की संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया है। गयाना के मंदिरों से आते शंख और घंटियों के स्वर, मस्जिदों से आती अजान आवाज तथा गिरिजाघरों की प्रार्थना भारत से भिन्न नहीं है। यह गयाना की आत्मा की आवाज है। गयानावासियों के घरों के सामने लगी रंग-बिरंगी झंडियां हिंदी के भजन और गीत, उर्दू गज़लें गयाना के रंग को निखार रही हैं। दीपावली, फगवा, ईद आदि यहां के राष्ट्रीय त्योहार हैं। अनेक नदियों के इस सुंदर और मनोहर देश गयाना में विभिन्न धर्मों की एक समवेत संस्कृति निरंतर पुष्पित एवं पल्लवित होती रहेगी— यही हमारी आशा है और आकांक्षा भी।

□

गयाना का राष्ट्रीय त्योहार-फगवा

डॉ. रामजी तिवारी

होली का त्योहार कुछ भिन्नताओं के साथ विश्व के अनेक भागों में मनाया जाता है। होलिका-दहन और रंग खेलना इसकी प्रमुख पहचान है। इटली का 'बेलियाकोनोन्स', अमेरिका का 'होबो', रूस का 'हास्य पर्व', जर्मनी का 'ईस्टर', चीन का 'च्वेजे', बेल्जियम और फ्रांस का 'मूर्ख दिवस', पोलैंड का 'आरशिना', यूनान का 'मैपोल', आदि त्योहार अपनी प्रस्तुति-प्रक्रिया में होली के ही समान धर्मा हैं। इन त्योहारों के मिथकीय संदर्भों, समय और सामाजिक विधानों में पर्याप्त भेद है किंतु उनकी मूल प्रकृति भारतीय होली के अत्यंत समीप है। जिन देशों में भारतीय मूल के लोग शताब्दियों पहले जाकर बसे थे और कालक्रम के प्रभाव ने वहाँ के वातावरण को पूर्णरूपेण आत्मसात कर लिया है, उन देशों में भारतीय संस्कृति को सप्राणता प्रदान करनेवाले सांस्कृतिक उत्सव, पर्व, त्योहार आदि अभी भी अपनी जड़ जमाए हुए हैं। मारीशस, फीजी, गयाना, सूरीनाम, ट्रिनिडाड आदि देशों में भारतीय मूल के अधिसंख्य लोगों के रहने के कारण भारतीय व्रतों और त्योहारों की बड़ी लोकप्रियता है। इन देशों में होली, दीपावली, रामनवमी, जन्माष्टमी आदि धूमधाम से मनाई जाती हैं।

गयाना में होली का त्योहार अत्यंत लोकप्रिय है। इस दिन राष्ट्रीय स्तर पर सभी सरकारी और गैर सरकारी कार्यालय, औद्योगिक प्रतिष्ठान, विद्यालय आदि बंद रहते हैं। भारतीय मूल के अतिरिक्त समुदायों के लोग भी बड़े उत्साह के साथ इस त्योहार में भाग लेते हैं। नगरों और ग्रामीण अंचलों में समान उल्लास के साथ यह त्योहार मनाया जाता है। यहाँ पर इस त्योहार के मनाने की विधि पूर्णतया भारतीय है।

भारत की भाँति ही यहाँ होली की भूमिका वसंत पंचमी से आरंभ होती है। गयाना में सामुदायिक जीवन के केंद्र मंदिर हैं। सामाजिक उत्सवों और त्योहारों के मनाने में इन मंदिरों की केंद्रीय भूमिका होती है। वसंत पंचमी के दिन लोग गाँव अथवा नगर के समीपवर्ती मंदिर में एकत्र होते हैं। भारतीय मूल के हिंदू इस दिन की बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षा करते हैं। मंदिर में भजन-गायन का कार्यक्रम होता है। इस अवसर पर, राम, कृष्ण और भगवान विष्णु से संबंधित भजन गाए जाते हैं। इसी समय 'चौताल' (होली के समय गाया जाने वाला विशेष गीत) गाने का आरंभ किया जाता है। इस अवसर पर हवन भी किया जाता है। मंदिर की कार्यविधि संपन्न हो जाने के पश्चात पुरोहित के नेतृत्व में होलिकापीठ के निश्चित स्थान पर सभी लोग जाते हैं। वहाँ पर एक मुख्य यजमान चुना जाता है और मंत्रोच्चार के साथ अरंडे के पौधे का आरोपण किया जाता है। उसके बाद लोग उसकी परिक्रमा करते हैं। भजनों और

चौतालों का कार्यक्रम भी चलता रहता है। सारी विधि संपन्न हो जाने के बाद लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने घरों को जाते हैं।

ग्रामीण अंचलों में वसंत पंचमी के दूसरे दिन से ही लकड़ी के टुकड़े, वृक्षों की टहनियाँ आदि होलिकापीठ के पास एकत्र करना आरंभ कर देते हैं, किंतु नगरीय भागों दाह के एक-दो दिन पूर्व ही लकड़ी खरीदकर लायी जाती है। ग्रामीण अंचलों में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपना एक निश्चित अनुष्ठान मानकर प्रतिदिन एक-दो टुकड़ा लकड़ी होलिकापीठ पर रखते हैं।

वसंत पंचमी के बाद चौतालों की धूम आरंभ होती है। प्रत्येक मंदिर के साथ चौताल गायकों का दल है' ढोल, मजीरा, झाल और घनताल ही इसमें प्रयुक्त होनेवाले प्रमुख वाद्य हैं। कहीं-कहीं पर कुछ पुराने लोग करताल भी बजाते हैं। चौतालों की विषय-वस्तु प्राय: राम, कृष्ण, शिव, ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रार्थना होती है। कभी राधा-कृष्ण की प्रणय-लीलाओं से संबंधित अथवा अन्य श्रृंगारिक चौताल गाए जाते हैं किंतु उन्होंने हिंदी शब्दों को रोमन लिपि में लिख लिया है। इस प्रकार रोमन लिपि में छपी हुई चौताल की पुस्तकें भी हैं। आश्चर्य तब होता है जब यह ज्ञात होता है कि गाये जानेवाले चौताल के एक भी शब्द का अर्थ उन्हें नहीं मालूम है फिर भी वे अपनी पूरी तल्लीनता के साथ गाते समय आत्मविभोर हो जाते हैं। कुछ लोग तो गाते-गाते खड़े होकर नाचने लगते हैं। अनेक गायकों को लंबे-लंबे अनेक चौताल कठस्थ हैं।

वसंत पंचमी से लेकर होलिका दहन तक की अवधि में चौताल खूब गाये जाते हैं। अनेक स्थानों पर चौताल गायन की प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। 'गयाना हिंदू धार्मिक सभा' और 'महात्मा गांधी आर्गेनाइजेशन' जैसे प्रतिष्ठित संगठन भी चौताल प्रतियोगिताएँ आयोजित करते हैं।

होलिका दहन के दिन होलिका पीठ को तैयार कर दिया जाता है। होलिका दहन के निश्चित समय की घोषणा रेडियो के माध्यम से धार्मिक संगठनों द्वारा की जाती है। निश्चित समय पर लोग संबद्ध मंदिर के परिसर में एकत्र हो जाते हैं। मंदिर में गायक मंडली द्वारा भजन और चौताल का गायन होता है। कुछ प्रार्थनाओं की धुनों को भी भक्ति भाव से दुहराया जाता है। कुछ मंदिरों में हवन विधि संपन्न की जाती है और महाभोग का वितरण होता है। मंदिर का कार्यक्रम समाप्त होने पर गायक मंडली चौताल गाती हुई होलिका पीठ की ओर प्रस्थान करती है। होलिका पीठ के स्थान पर अनेक लोग सीधे घरों से भी आते हैं। इस स्थान पर बस्ती के स्त्री-पुरुष, आबाल बृद्ध सभी एकत्र होते हैं। चौताल मंडली के पहुँच जाने पर पुरोहित के द्वारा गणेश पूजा और हवन विधि संपन्न की जाती है। हवन कुंड होलिका पीठ से बिलकुल सटकर बनाया जाता है। इस अनुष्ठान में प्राय: उसी व्यक्ति को यजमान बनाया जाता है जिसे अरंडे के आरोपण के समय बनाया गया था। उस व्यक्ति को कुछ निश्चित नियमों का पालन करना पड़ता है। हवन की पूर्णाहुति के साथ ही समिधाओं द्वारा होलिका में आग लगा दी जाती है। पुरोहित, यजमान तथा कुछ अन्य महत्वपूर्ण लोग मंत्रोच्चार के साथ दह्यमान होलिका की परिक्रमा करते हैं। जब होलिका की लपटें धधकने लगती है तो लोग अपने साथ लाये गये विविध प्रकार के अनाज, मक्के के भुट्टे, नारियल आदि उस ज्वाला को समर्पित करते हैं। होलिका की अग्नि में भुने हुए नारियल को बाहर निकालकर प्रसाद के रूप में बाँटा जाता है। लोग उसे बड़े आदर के साथ ग्रहण करते हैं।

होलिका दहन के पश्चात् बहुत से लोग अपने घरों को चले जाते हैं। किंतु प्रमुख लोग पुन: मंदिर में जाते हैं। वहाँ पहुँचकर पुन: बैठक होती है। चौताल और भजन गाए जाते हैं। रात को विलंब तक यह कार्यक्रम चलता रहता है और उसके बाद सभा विसर्जित होती है।

होलिका दहन के दूसरे दिन लोग प्रात:काल होलिका पीठ के पास एकत्र होते हैं। होलिका भस्म को शरीर से लगाते हैं। भस्म राशि की परिक्रमा करते हैं। इसी अवसर पर कम से कम पाँच 'कबीर'

गाने का रिवाज है। 'कबीर' में प्रह्लाद की बूआ होलिका के प्रति अपमान सूचक शब्द होते है गयाना में ऐसे गाने वालों की संख्या घट रही है। नई पीढ़ी के लोगों से यह मौखिक परंपरा छूटती जा रही है, किंतु पुरानी पीढ़ी के कुछ लोग अभी भी हैं जो पूरे उत्साह के साथ ऊँची आवाज में 'कबीर' गाते हैं होलिका पीठ की भस्मराशि को लोग अपने घरों को भी ले जाते हैं।

होलिका पीठ से विसर्जित होते ही आरंभ होता है होली का हुड़दंग। ग्रामीण अंचलों में यह दृश्य देखने लायक होता है। समाज की सहज मर्यादाओं को उपेक्षित कर स्त्री-पुरुष मुक्त भाव से होली खेलते हैं। गोबर, कालिख आदि कुछ भी वर्ज्य नहीं है। किसी को पानी के गड्ढे या नाली में गिरा देना, किसी को कीचड़ से अपरूप कर देना सहजरूप में क्षम्य हैं। तरुण-तरुणियों की टोलियाँ उन्मत्त होकर होली खेलती हैं। किसी को भी सहजरूप में पहचान पाना संभव नहीं होता। नगरों में प्रात:कालीन होली पानी और रंगों से ही खेली जाती है किंतु उत्साह की उद्दामता ग्रामीण क्षेत्रों में कम नहीं होती। गलियों में सड़कों पर मुहल्लों में होली खेलनेवाली टोलियाँ उत्साह पूर्वक होली खेलती दिखाई पड़ती हैं। जो स्त्री-पुरुष किसी कारण से बाहर होली खेलने नहीं निकलते उनका मन खिड़कियों से बाहर आकर मनोरस में भीगता रहता है। यह कार्यक्रम लगभग एक बजे दिन तक चलता रहता है।

पानी और कीचड़ की होली के बाद लोग अपने-अपने घरों को जाते हैं। स्नान आदि से निपटकर अच्छे कपड़े पहनते हैं और मंदिर में पुन: एकत्र होते हैं। पुरोहित के द्वारा मंदिर में पूजा संपन्न की जाती है। हवन और आरती की विधि संपन्न की जाती है। इसके पश्चात् चौताल गायकों की मंडली अपना गायन आरंभ करती है। इस समय सभी गायक अपनी सर्वोत्तम प्रतिभा का उल्लासपूर्ण प्रदर्शन करते हैं। मंदिर में गायन समाप्त करके गायकों की मतवाली टोली गाँव के प्रत्येक दरवाजे पर गाती-नाचती हुई जाती है। जिस दरवाजे पर चौताल गायक पहुँचते हैं वहाँ उनका हार्दिक स्वागत होता है। उन्हें खाने के लिए मिष्ठान दिए जाते हैं। मिष्ठानों में पेड़ा, बरफी, गुलाब-जामुन, गुझिया, गुलगुला, शकरपारे, जलेबी विशेषरूप से तैयार किए जाते हैं। फुलौरी, विविध प्रकार के पकौड़े, समोसे और उबालकर तैयार किए गए चने आदि भी नमकीन रूप में परोसे जाते हैं। चौताल गायकों की मंडली देर रात तक घूमती रहती है। फिर भी जिन घरों पर वे उस दिन नहीं पहुँच पाते वहाँ दूसरे दिन जाते हैं। इस दिन के लिए भेद-भाव या आपसी वैमनस्य भुला दिया जाता है। होली का रंग सभी को अनुराग के रंग रंगकर मन के आवांछित कलुष को धो देता है। लोग प्रत्येक दरवाजे पर रंग खेलते हैं और एक दूसरे से गले मिलते हैं। ग्रामीण अंचलों में यह प्रथा अपने मूलरूप में वर्तमान है।

नगरों में भी दोपहर के बाद लोग मंदिर में एकत्र होते हैं। पूजा, हवन, आरती आदि की विधियाँ संपन्न होती हैं। प्रसाद वितरित होता है। भजन और चौताल गाए जाते हैं। किंतु अब नगरों में प्रत्येक दरवाजे पर जाने के स्थान पर विशिष्ट स्थानों पर सामूहिक आयोजन किए जाते हैं। ये आयोजन धार्मिक और सामाजिक संगठनों अथवा संस्थाओं द्वारा किए जाते हैं। इन स्थानों पर लोग बड़ी संख्या में एकत्र होते हैं और व्यापक स्तर पर रंग, पाउडर, इत्र आदि से होली खेलते हैं। इस अवसर पर आकर्षक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है। ये नृत्य-गीत के रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम लोगों में बहुत लोकप्रिय हैं और लोग इस अवसर की व्यग्रता से प्रतीक्षा करते हैं। इस प्रकार के 'गयाना हिंदू धार्मिक सभा' सनातन धर्म महासभा, महात्मा गांधी आर्गेनाइजेशन जैसे संगठन प्रमुख हैं। इन आयोजनों का स्वरूप स्नेह सम्मेलनों का होता। इन कार्यक्रमों को रेडियो से भी प्रसारित किया जाता है।

कुछ विशिष्ट स्नेह सम्मेलनों में गयाना के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री अन्य मंत्री गण एवं सांसद भी उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं और मुक्त भाव से लोगों के साथ होली खेलते हैं। इस दिन लोग नि:संकोच

होकर इन सामान्य विशिष्ट व्यक्तियों के साथ होली खेलते हैं और रंगों एवं सुगंधित पाउडरों से स्नान करते हैं। यह त्योहार आपसी दूरी और भेद समाप्त कर देता है।

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र जार्जटाउन में भी होली मनाने का आयोजन व्यापक पैमाने पर होता है। सांस्कृतिक केंद्र के अध्यापकों, विद्यार्थियों और भारतीय उच्चायोग के अधिकारियों के अतिरिक्त अन्य स्थानीय लोग इस आयोजन में उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। अनेक प्रकार के नृत्य-गीत एवं अन्य प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। यह सारा आयोजन 'केंद्र' के प्रांगण में किया जाता है जिससे सांस्कृतिक कार्यक्रमों के समय रंग खेलते रहने में किसी प्रकार की असुविधा न हो।सैकड़ों की संख्या में एकत्र लोग बड़े उत्साह से परस्पर मिलते हैं। अनेक लोग अपने साथ मिठाइयाँ और अन्य प्रकार की भोजन सामग्री भी लाते हैं और बड़े प्रेम से उन्हें लोगों में वितरित करते हैं। इस अवसर पर केंद्र के विद्यार्थियों का उत्साह दर्शनीय होता है। केंद्र पर मनाई जाने वाली होली, केंद्र के विद्यार्थियों, संबद्ध व्यक्तियों, भारतीय परिवारों के अतिरिक्त यहाँ स्थानीय लोगों में भी लोकप्रिय है। अनेक स्थानीय गण्यमान्य लोग इस कार्यक्रम में भाग लेकर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आनंद लेते हैं।इस नगर में भारतीय संस्कृति के 'फगवा उत्सव' का अपना विशिष्ट महत्व है।

होली के दिन गयाना के हिंदू परिवारों में अनेक प्रकार के उत्तम व्यंजन तैयार किए जाते हैं। इस दिन के भोजन में खीर, पूरी, दाल पूरी, बरा, फुलौरी आदि का विशेष महत्व है। एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। गयाना में अधिसंख्य लोग मांसाहारी हैं किंतु होली के दिन कोई भी हिंदू मांसाहार नहीं करता।सभी हिंदू घरों में केवल शाकाहारी भोजन ही बनता है। इसलिए इस दिन विविध प्रकार के पकवानों और तरकारियों को प्रमुखता दी जाती है।

होली के कुछ पूर्व कुछ संस्थाओं द्वारा 'प्री फगवा मेला' आयोजित किया जाता है। इस मेले में अनेक प्रकार के आकर्षण होते हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर भाषण दिए जाते हैं। कुछ संस्थाओं द्वारा इसी अवसर पर कुछ व्यक्तियों को उनकी विशिष्ट उपलब्धियों के लिए सम्मानित किया जाता है और उन्हें मानपत्र दिए जाते हैं। गयाना हिंदू धार्मिक सभा द्वारा आयोजित 'प्री फगवा मेला' यहाँ पर बहुत विख्यात है। यह मेला दो दिन तक चलता है और हजारों की संख्या में लोग उपस्थित होकर इसका आनंद लेते हैं। अन्य सामाजिक सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं में भी इस प्रकार के प्री फगवा उत्सव का आयोजन किया जाता है।

ग्रामीण अंचलों में इस प्रकार का वृहत् आयोजन नहीं होता किंतु फगवा से कुछ समय पूर्व वहाँ भी कुछ आयोजन होते हैं। कुछ गाँवों में उत्साही लोग अपने गाँव के मंच पर नाटक खेलते हैं। कहीं-कहीं बच्चों के कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। कहीं-कहीं धार्मिक प्रवचन आदि का आयोजन भी किया जाता है। कुछ गाँवों में चौताल की प्रतियोगिताएँ आयोजित होती हैं। इस प्रकार के स्नेह सम्मेलन अथवा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रमुख त्योहार की पूर्वपीठिका के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। अन्य स्थानों पर कार्य करने वाले या अस्थाई रूप से रहनेवाले लोग इस त्योहार में भाग लेने के लिए विशेष रूप से अपने घरों को आते हैं। अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड जैसे सुदूर देशों में रहनेवाले लोग भी अपने देश गयाना आने की इच्छा रखते हैं और जिनके लिए संभव हो पाता है वे आते भी हैं।

गयाना, इस वर्ष भारतीयों के प्रथम आगमन की एक सौ पचासवीं वर्षगाँठ मना रहा है। इस लंबी अवधि में यहाँ बसे भारतीय मूल के लोगों के मूल के जीवन में अनेक उथल-पुथल हुए, अनेक उतार-चढ़ाव आये। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पाश्चात्य संस्कृति के अनेक प्रभाव भी सहज रूप से समाविष्ट हो गये हैं। उनके भोजन और वेश-भूषा में भी क्षेत्रीय प्रभाव की प्रधानता है। भारतीय भाषाओं को वे भूल

गए हैं और अंग्रेजी का उपयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं किंतु उनकी आत्मा का तार अभी भी भारत से पूरी तरह जुड़ा है। पूजा, अनुष्ठान, व्रत, त्योहार, संस्कार आदि आज भी पूरी तरह भारतीय पद्धति से होते हैं। सांस्कृतिक स्तर पर ये लोग पूरे भारतीय हैं और अपनी भारतीयता पर गर्व करते हैं। यही कारण है कि पर्वों और त्योहारों के अवसर यहाँ पर भारत की लोक संस्कृति सगुण-साकार हो जाती है।

होली के त्योहार को यहाँ पर 'फगवा' कहा जाता है। भारत से यहाँ आने वाले लोगों में अधिकांश उत्तरप्रदेश और बिहार के थे। वहाँ के लोकजीवन में आज भी इसे 'फगुआ' या 'फगवा' कहते हैं। वह शब्द यहाँ स्वीकार कर लिया गया। प्रह्लाद, होलिका और हिरण्यकष्यप की लोक विश्रुत पुराकथा भी यहाँ व्यापक रूप में प्रचलित है। कालांतर में शिक्षित लोग पुरोहितों द्वारा उसकी पुष्टि पुराण कथाओं के आधार पर की गई। गयाना के हिंदू समाज में फगवा त्योहार उसी प्रकार लोकप्रिय और समादृत है जिस प्रकार भारत में।

□

भारत और गयाना के सांस्कृतिक संबंध

के.पी. नारायण

भारत और गयाना के बीच संबंधों की शुरूआत आज से १५० साल पहले हुई थी जबकि 'व्हिटबी' और 'हेसपरस' नामक दो जहाजों से लगभग ४०० शर्तबंद मजदूर दक्षिण अमरीका के इस डेमरारा टापू में आए थे। उस समय यह द्वीप ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के अधीन था तथा दास प्रथा की समाप्ति के बाद अपने गन्ने के बागानों के लिए सस्ती दर पर श्रमिकों की तलाश करते-करते उन्होंने भारत से मजदूरों का निर्यात किया था। ये शर्तबंद मजदूर पाँच वर्ष के करार पर गयाना आये थे तथा यहाँ के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। बाद में शर्तबंद मजदूर मँगवाने की प्रथा के खिलाफ भारत में जोरदार प्रतिक्रिया हुई। बालकृष्ण गोखले, मदनमोहन मालवीय आदि भारतीय नेताओं ने इस अमानवीय प्रथा का घोर विरोध किया जिसके फलस्वरूप १९१७ में ब्रिटिश सरकार को मजबूर होकर शर्तबंद मजदूरों के निर्यात की निर्मम एवं शर्मनाक प्रथा को बंद करने की घोषणा करनी पड़ी।

१९३८ से १९१७ के बीच आये मजदूर अपने साथ भारतीय रीति-रिवाज परंपरा धर्म और संस्कृति लाए जो आज भी गयाना में जीवित हैं। यही कारण है कि भारतीय भोजन, भारतीय त्योहार, जन्मोत्सव, विवाह, श्राद आदि की भारतीय प्रथा तथा विशेष अवसरों पर भारतीय पोशाक आज गयाना के जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं। दीपावली, होली, ईद जैसे भारतीय त्योहारों को गयाना का राष्ट्रीय त्योहार माना जाता है जो देश भर में अत्यंत हर्ष एवं उल्लास से साथ मनाया जाता है। गयाना के प्राय: सभी राजकीय उत्सवों पर गीता, कुरान तथा बाइबिल के अंशों का पाठ होता है तथा भारतीय नृत्य एवं संगीत के कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं। अत: भारत एवं गयाना के संबंधों के १५० साल काफी संघर्ष-पूर्ण और रचनात्मक रहे हैं।

इन संबंधों को सुदृढ़ आधार प्रदान करने में अनेक धर्म-प्रचारकों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऐसे लोगों में भारत के महान क्रांतिकारी तथा समाज-सुधारक भाई परमानंद तथा महात्मा गांधी के सहयोगी दीनबंधु सी.एफ. एंड्रयूज के नाम उल्लेखनीय हैं। भाई परमानंद ने वर्तमान शताब्दी के दूसरे दशक के प्रारंभ में गयाना में आर्य समाज मंदिर की स्थापना की तथा यहाँ के भारतीय समुदाय को हिंदी एवं संस्कृत की शिक्षा देने की व्यवस्था करवाई। इसी प्रकार दीनबंधु सी.एफ. एंड्रयूज ने गयाना आकर यहाँ के भारतीयों की समस्या का अध्ययन किया तथा उनके सामाजिक जीवन में सुधार लाने की सिफारिश की। इसके बाद से भारत से धर्म-प्रचारकों, मिशनरियों तथा समाज-सेवियों के आवागमन का क्रम चलता रहा जिसके परिणामस्वरूप गयाना में भारत की छवि

एक संघर्षशील राष्ट्र के रूप में उभरी तथा गयानावासियों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को खुले शब्दों में अपना नैतिक समर्थन प्रदान किया। १५ अगस्त १९४७ को जब भारत आजाद हुआ तो पराधीन गयाना के गाँव-गाँव में भारतीय स्वतंत्रता समारोह हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाया गया। जिसमें न सिर्फ गयाना में रहने वाले भारत मूल के लोगों ने बल्कि यहाँ की सभी जातियों और नस्लों के लोगों ने हिस्सा लिया जो गयाना तथा भारत की जनता के बीच बढ़ते हुए आत्मीय संबंधों का एक अभूतपूर्व उदाहरण था।

जैसा कि सर्वविदित है, भारत की आजादी का उद्देश्य भारत तक ही सीमित नहीं था। महात्मा गांधी, पंडित नेहरू आदि नेताओं ने अपने संघर्ष को विस्तृत आयाम दिया था। जिसमें संसार से उपनिवेशवाद को समाप्त करना, समानता और विश्व शांति कायम करना और नस्लवाद को समाप्त करना आदि भी शामिल था। जाहिर है कि भारत ने गयाना की आजादी को अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया। यही कारण है कि गयाना के स्वतंत्रता संग्राम के नेता डॉ. छेदी जगन तथा उनके सहयोगी श्री बर्नहम जब भारत गए तो वहाँ उनका भव्य स्वागत किया गया। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने उनके सम्मान में आयोजित एक समारोह में गयाना की आजादी की लड़ाई में तथा आजादी के बाद स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में इसके विकास में भारत के पूर्ण समर्थन एवं सहयोग का आश्वासन दिया।

गयाना की स्वतंत्रता से पहले से ही भारत सरकार गयाना में हिंदी तथा संस्कृत की पढ़ाई के लिए अध्यापक भेजती थी जो गयाना के गाँव में जाकर हिंदी तथा भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते रहे और जिन्होंने भारत एवं गयाना के द्विपक्षीय संबंधों को सौहार्द्रपूर्ण बनाया। आज भी गयाना के लोग भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में इन अध्यापकों का नाम आदर के साथ स्मरण करते हैं। इसी प्रकार मई १९६६ में गयाना की आजादी से एक साल पहले ही भारत ने यहाँ अपना राजनयिक आयोग खोला जिसने दोनों देशों के बीच के द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत बनाने में सक्रिय भूमिका निभाई है। पिछले २२ वर्षों में भारत और गयाना राष्ट्रमंडल, गुटनिरपेक्ष आंदोलन तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में मिल-जुल कर काम कर रहे हैं। रंगभेद, गुटनिरपेक्षता आर्थिक तथा राजनीतिक समानता एवं विश्व शांति के मामले में दोनों देशों के विचार एक जैसे हैं। गयाना में भारत के महान नेता महात्मा गांधी की स्मृति में राजधानी के एक महत्वपूर्ण बगीचे में बापू की प्रतिमा स्थापित की है, जहाँ हर रोज सैकड़ों लोग उनके दर्शन को पहुँचते हैं। गुटनिरपेक्षता की नीति के प्रति गयाना के पूर्ण समर्थन के प्रमाण में जार्जटाउन के ऐतिहासिक केथेड्रल के सामने मार्शल टीटो, नासिर, नुक्रमा और जवाहरलाल नेहरू की प्रतिमाएँ लगी हैं, जो शहर का एक आर्कषक दर्शनीय स्थल बन गया है।

भारत और गयाना के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान को जारी रखने के लिए ३० दिसंबर १९७४ को दोनों देशों के बीच हस्ताक्षरित सांस्कृतिक समझौते के अनुसार हर वर्ष गयाना के छात्रों को मेडिकल, इंजीनियरिंग या एग्रिकल्चरल कॉलेजों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्ति दी जाती है। इसके अलावा भारत सरकार की ओर से राष्ट्रमंडल छात्रवृत्ति, हिंदी-शिक्षण छात्रवृत्ति तथा संगीत छात्रवृत्ति भी दी जाती है।

भारतीय आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग कार्यक्रम के अंतर्गत भारत सरकार हर वर्ष गयाना के १५ कार्मिकों को लघु उद्योग, वस्त्र इंजीनियरिंग, वित्तीय एवं कार्मिक प्रबंध, विदेश-व्यापार आदि के तकनीकी प्रशिक्षण के लिए छात्रवृत्ति तथा आने-जाने का विमान किराया देती है। इसी कार्यक्रम के अंतर्गत पिछले दस वर्षों में चमड़ा-उद्योग, रेल, सड़क-निर्माण, कृषि तथा जन-संचार के विशेषज्ञों ने गयाना आकर इन क्षेत्रों के विकास के बारे में सरकार को समुचित सुझाव दिये हैं। सरकारी दायरे के

अलावा भी गयाना में अनेक भारतीय डाक्टर, इंजीनियर तथा तकनीकी विशेषज्ञ काम कर रहे हैं। इसी प्रकार भारत से प्रशिक्षित डॉक्टरों तथा अन्य तकनीकी विशेषज्ञों की भी संख्या गयाना में कम नहीं है। हालांकि इतमें अनेक अब गयाना छोड़कर दूसरे देशों में चले गये हैं।

भारत एवं गयाना के संबंधों के इतिहास में गयाना की राजधानी जार्जटाउन में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की १९७३ में स्थापना को एक युगांतरकारी कदम माना जाता है। इस केंद्र में पिछले १५ वर्षों से गयाना के लोग भारतीय नृत्य-संगीत तथा हिंदी भाषा की शिक्षा ले रहे हैं। वाद्य-यंत्रों में तबला के अतिरिक्त अब शहनाई और बांसुरी की कक्षा भी शुरू हो गयी है। भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के छात्र-छात्राओं में गयाना के प्रशिक्षण प्राप्त करके अपनी कला का प्रसार पूरे लैटिन अमरीका में किया है। केंद्र के प्रतिभाशाली छात्रों में फिलिप मेकक्लिनटॉक का नाम अग्रगण्य है जिनकी मृत्यु १९८६ में हो गयी। उन्होंने भारतीय सांस्कृति संबंध परिषद् की छात्रवृत्ति पर दिल्ली जाकर कत्थक केंद्र में बिरजू महाराज से कत्थक की शिक्षा प्राप्त की थी तथा भारत लौटकर जार्जटाउन के राष्ट्रीय नृत्य विद्यालय में गयानावासियों को कत्थक सिखाना शुरू किया। आज भी उनकी छात्राएँ दक्षतापूर्वक कत्थक नृत्य कर रहे, हैं। फिलिप के दूसरे सुयोग्य साथ मुमताज अली भी इस समय गयाना में कत्थक-नृत्य के सबसे प्रतिभाशाली कलाकार माने जाते हैं। नृत्य के क्षेत्र में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र जार्जटाउन से प्रशिक्षित मार्लिन बोस, नादिरा एवं इंद्राणी आज गयाना से बाहर भी कत्थक नृत्य का शानदार प्रदर्शन कर भारत एवं गयाना की गरिमा को बढ़ा रही हैं।

गयाना में हिंदी गीत, भजन, गजल आदि काफी लोकप्रिय हैं। हर गाँव तथा शहरों की हर गलियों में आप टेप पर बजते हिंदी गीतों का आनंद ले सकते हैं। मंदिरों में हिंदी भजनों एवं संस्कृत श्लोकों का उच्चारण ५ वर्ष के शिशु से १०० वर्ष के वृद्ध तक इतनी शुद्धता से करते हैं कि भारतीय राष्ट्रिकों को उनके सामने सामान्यत: चुप्पी साधनी होती है। गयाना की नई पीढ़ी के लोगों में हिंदी पढ़ने का उत्साह है लेकिन वे हिंदी बोल नहीं पाते। गीतों एवं भजनों के कैसेट सुनकर या रोमन में लिखकर उन्हें याद करते हैं। देश भर में भारत की अनुकूल तथा प्रतिकूल छवि प्रस्तुत करने में हिंदी फिल्मों का योगदान महत्व-पूर्ण रहा है। गयाना के गैरभारतीयमूल के लोग भी बड़ी संख्या में हिंदी फिल्में देखते हैं। यहाँ कई सिनेमाघर ऐसे हैं, जहाँ साल भर सिर्फ हिंदी फिल्में दिखायी जाती हैं। गयाना में सुनने के स्तर तक हिंदी को जीवित रखने में हिंदी फिल्मों की भूमिका काफी सराहनीय रही है।

भारत और गयाना के बीच विद्यमान सौहार्द्रपूर्ण सांस्कृतिक संबंधों को और आगे बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों देशों के साहित्यकार, विचारक, संगीतकार तथा अभिनेता आदि एक-दूसरे देश की यात्रा करें तथा दोनों देशों की जनता के बीच सौहार्द एवं सद्भाव बढ़ावें।

□

भारतीय संस्कृति का प्रतिबिंब गयाना

के.एल. मामनानी

दक्षिण अमरीका स्थित गयाना अपने नैसर्गिक सौंदर्य के लिए कैरेबियन देशों में विख्यात है। यह देश छोटे-छोटे ३६५ द्वीपों से मिलकर बना है अर्थात् वर्ष के प्रति दिवस के हिसाब से एक द्वीप २,१४,९७० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला यह देश तीन प्रांतों, डेमरारा, बरबीस व एसीकिबो (देश की तीन प्रमुख नदियों के नाम) में बँटा हुआ है। इसके उत्तर में अटलांटिक महासागर, पश्चिम में वैनेजुएला, पूर्व में सूरीनाम व दक्षिण-पश्चिम में ब्राजील है।

यदि देश को प्राकृतिक भागों में बाँटा जाए तो चार प्रक्षेत्र बनते हैं। समुद्री सतह से नीचे बसा तटीय मैदान वाला प्रक्षेत्र, घने जंगलों का प्रक्षेत्र, सवाना प्रक्षेत्र, व पर्वतीय प्रक्षेत्र। पर्वतीय प्रक्षेत्र में लेथम के पास कनकू पर्वतों की शृंखलामाला देखकर लगता है गोया ये पर्वत न होकर किसी चित्रकार की तूलिका से गढ़े अलग-अलग आकारों के सुंदर, सुडौल चित्र हों। वैसे रोराइमा पर्वत पर इस क्षेत्र की सबसे ऊँची चोटी २७७० मीटर की ऊँचाई पर स्थित है।

यह देश भूकंप, सूखा, अतिवृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोप से बचा रहा है। वातावरण स्वच्छ एवं वायु निर्मल व शुद्ध है। जलवायु समशीतोष्ण होने के कारण मौसम, वर्ष पर्यंत सुहाना लगता है। समुद्र तटीय क्षेत्रों का तापमान २७.७ डिग्री सेंटीग्रेट रहता है जबकि अन्य क्षेत्रों का औसत २८.३ डिग्री सेंटीग्रेड रहता है। वैसे तो बारह महीने यदा-कदा वर्षा होती रहती है। फिर भी मई से जुलाई व दिसंबर से फरवरी वर्ष में मुख्य बारिश के दो मौसम होते हैं। सम्भवत: वर्षा की अधिकता के कारण यह देश कभी नदियों का देश कहलाता था। क्योंकि पानी का सैलाब हर जगह नदियों का सा दृश्य प्रस्तुत कर देता था। यहाँ की वर्षा की एक और विशेषता है—वर्षा और धूप की आँख मिचौनी अर्थात् बारिश, फिर एकाएक तेज धूप का निकल आना और एकाएक तेज बौछारें। यह क्रम चलता ही रहता है जिस कारण नीले आसमान पर इंद्र धनुष की कल्पना यहाँ निरंतर साकार होती रहती है।

अमरीइंडियन जाति के लोग यहाँ के मूल निवासी हैं। सत्रहवीं सदी में डच लोग यहाँ के सर्वप्रथम प्रवासी शासक थे किंतु १७९६ में डच लोगों को अंग्रेजों ने भगा दिया। सन् १८३१ में डेमरारा, बरबीस व एसीकिबो तीन प्रांतों को मिलाकर 'ब्रिटिश गयाना' का निर्माण हुआ। डच शासन के दौरान जब अमरीइंडियन लोगों ने खेतों व बागानों पर काम करने से मना कर दिया तो दास-प्रथा के अंतर्गत अफ्रीका से लोगों (नीग्रो) को काम करने के लिए बुलाया गया। इसी दास-प्रथा के खिलाफ सन् १७६३ में सशक्त विद्रोह प्रारंभ हुआ, फलस्वरूप सन् १८३४ में दास-प्रथा का अंत हुआ। सन् १८३८ में

खेतिहर मजदूरों की पूर्ति के लिए, भारतीय लोगों की पहली टोली बंधुआ मजदूरों के रूप में आई। कड़े परिश्रमी होने के कारण भारतीय मजदूर उपयुक्त पाये गये पर अंग्रेजों की शोषण की नीति के कारण पुनः असंतोष की चिनगारियाँ भड़कने लगीं। जिस कारण १८३८ से १९६६ का काल अंग्रेजों के इस उपनिवेश में आजादी के लिये छटपटाते, भारतीय व नीग्रो लोगों के संघर्ष का काल रहा। अंततः २६ मई १९६६ को स्वतंत्रता प्राप्त होने पर ब्रिटिश गयाना अब गयाना कहलाया। आजादी के चार वर्ष बाद देश में गणतांत्रिक प्रणाली लागू हुई। १९७० में गयाना निर्गुट देशों की बिरादरी में शामिल हुआ। कैरेबियन देशों में क्षेत्रीय एकता के लिए गयाना ने अहम भूमिका निभाई व कला एवं संस्कृति के विकास के लिए गयाना की पहल पर प्रथम कैरिफेस्टा मेले का आयोजन जार्जटाउन में सन १९७२ में संपन्न हुआ। इसके अतिरिक्त यह देश कॉमनवेल्थ का संसद भी है। जनसंख्या में सर्वाधिक प्रतिशत भारतीय मूल के लोगों का है, फिर बाद में नीग्रो आते हैं। यहाँ तीन धर्मों के अनुयायी प्रमुखतया हैं और ये धर्म हैं, हिंदू, मुस्लिम और ईसाई। देश के क्षेत्रफल को देखते हुए आबादी का घनत्व काफी कम है। यहाँ की राजधानी 'जार्जटाउन' की आबादी करीब ढाई लाख है। अन्य प्रमुख कस्बों की जनसंख्या इस प्रकार है—लिडंन (३०,०००), न्यू एमस्टरडम (२०,०००), व कोरिवर्टन (२०,०००)। उल्लेखनीय है कि जार्जटाउन कभी 'बाढ़ से घिरे देश' की राजधानी कहलाता था क्योंकि जब कभी ज्यादा बारिश होती थी, देश में जगह-जगह नदियों में बाढ़ आ जाती थी। अधिकतर मकान मुख्य सड़क के किनारे बने हुए हैं, जिस कारण गाँवों की निर्मिति भी बड़ी आकर्षक लगती है।

क्षेत्रफल में जार्जटाउन भारत के छोटे शहरों यथा मध्यप्रदेश के उज्जैन, उत्तरप्रदेश के अलीगढ अथवा तमिलनाडु के मदुराई शहर से भी छोटा होगा, पर खूबसूरती में इन सभी शहरों से कई गुना सुंदर है। शहर की तमाम सड़कें यहाँ तक की गलियाँ भी डामर की बनी हुई हैं जिससे पूरे शहर में धूल तो कतई दिखाई नहीं देती। वर्षा के पानी के निकास हेतु सड़क के दोनों ओर गलियाँ बनी हुई हैं। जिनके जरिये वर्षा का सारा पानी डैमरारा नदी में समुद्र में चला जाता है और सड़कें वर्षा थमने के कुछ समय बाद ही स्वच्छ हो जाती हैं। इन नहरों में लगाये गये कमल के फूल वर्ष पर्यंत अपनी सुंदरता बिखेरते रहते हैं। सड़क के दोनों ओर की हरी मखमली दूब जहाँ नगर के अलौकिक सौंदर्य को बढ़ाती है वहीं सड़क के किनारे कतारबद्ध लगे ताड़ नारियल के वृक्ष अपना सौंदर्य बिखेरते रहते हैं।

देश में सड़क यातायात ही अधिक लोकप्रिय हो सका है। पूरे देश में रेल लाइन नहीं है, एक छोटी रेल लाइन जो पूर्व में थी अब बंद कर दी गई है। शासन की ओर से मुहैय्या कराई गई बस सेवा अपर्याप्त होने के कारण प्राइवेट मिनी बसें व कार-टैक्सी आम यातायात का साधन हैं, जिन लोगों के पास स्वयं का वाहन नहीं है वे शहर के विभिन्न स्थलों से तथा उपनगरों से परिवहन हेतु इन मिनी बस व कार-टैक्सी का उपयोग करते हैं। भारत के कई शहरों में उपलब्ध आटो-रिक्शा की तरह इन कार-टैक्सियों के चालक हर सड़क, यहाँ तक कि शहर की प्रमुख गलियों से भी जरूरतमंद यात्रियों को ले जाने का काम करते हैं। इसी कारण जार्जटाउन में साइकिल, स्कूटर व बसें गिनी-चुनी ही दिखायी देती हैं, पर कारों का काफिला देखकर भारत के बड़े शहरों के ट्राफिक की याद आ जाती है।

बैंकिंग सुविधा की ओर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि इस देश में कुल छः वाणिज्यिक बैंक हैं, जिनमें चार स्थानीय व दो विदेशी हैं। विदेशी बैंकों में बैंक ऑफ बड़ोदा एकमात्र भारतीय बैंक है और यही एकमात्र भारत सरकार का संस्थान भी है। २२ वर्षों से गयानावासियों की सेवा के साथ-साथ, प्रवासी भारतीय नागरिकों की बैंकिंग आवश्यकताओं का ध्यान रखना बैंक अपना विशेष कर्तव्य समझता है। उद्योग, वाणिज्य व व्यवसाय में जुड़े न सिर्फ भारतीय मूल के लोग वरन् अन्य समुदाय के लोग भी बैंक के साथ अपना कारोबार करते हैं, जो इनके बैंक में अटूट विश्वास का प्रतीक है।

शिक्षा के क्षेत्र में इंटरमीडिएट स्तर तक यह देश कैरेबियन देशों के समुदाय में अग्रणी रहा है। कालेज शिक्षा के लिए 'गयाना विश्वविद्यालय' देश का एकमात्र विश्वविद्यालय है जिसमें २००० से भी अधिक छात्र अध्ययनरत हैं। देशवासियों को हर स्तर पर नि:शुल्क शिक्षा देने का दायित्व शासन का है जिस कारण कापियाँ, किताबें आदि शिक्षण संस्थाओं द्वारा प्रदत्त की जाती हैं। शिक्षा सत्र सितंबर मध्य से प्रारंभ होकर जून में समाप्त होता है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है जो यहाँ की राजकीयभाषा भी है। अधिकांश स्कूलों में माध्यमिक स्तर पर फ्रेंच व स्पैनिश सह-भाषा के रूप में सिखाई जाती है। वेशभूषा के मामले में लोगों का रूझान आम भारतीय से कहीं ज्यादा है। गयाना के लोग अपनी आय का अधिकांश हिस्सा अपने सौंदर्य प्रसाधन व पहनावे पर खर्च करते हैं। यहाँ तक कि भारतीय मूल के लोग भी अपने चिरपरिचित परिधान को छोड़कर पाश्चात्य फैशन को अपनाने लगे हैं। पहनावे के साथ-साथ सौंदर्यबोध भी कहीं अधिक होने के कारण महिलायें, युवतियाँ उम्दा सौंदर्य प्रसाधनों व फैशनेबुल वस्त्रों में सदैव नजर आती हैं। कदाचित लोग अपनी आय का बड़ा हिस्सा पहनावे व सौंदर्य के रखरखाव पर खर्च करते है। भारतीय मूल के लोगों में जो कभी धोती-कुर्ता, साड़ी, ओढ़नी, सलवार-कुर्ता का फैशन था अब शनै:-शनै: लुप्त होता जा रहा है व पहनावे में स्कर्ट, ब्लाउज आदि का होना पाश्चात्य संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव है। पुरुषों में पेन्ट-शर्ट या बुशशर्ट (शर्ट जैक) सामान्य है किंतु सफारी सूट औपचारिक वेश-भूषा के अंतर्गत है।

'गयाना' वास्तव में अमरीइंडियन (यहाँ की मूल जाति) शब्द है जिसका अर्थ है 'नदियों का देश'। इस देश में कुछ नदियाँ पहाड़ी क्षेत्रों से निकलकर अटलांटिक महासागर के गर्भ में समा जाती है तो कुछ अधिक ऊँचाई से बहती हुई सुंदर जल-प्रपातों को जन्म देती है, इसी कारण गयाना के 'कैटूर प्रपात' को विश्व के सबसे ऊँचे जल प्रपात होने का सौभाग्य प्राप्त है। यह प्रपात २२६ मीटर की ऊँचाई से गिरता है अर्थात् 'न्यागरा फाल' (विश्वविद्यालय) की ऊँचाई के पाँच गुने के करीब। इस कारण कैटूर दर्शन' के बिना सैलानियों की गयाना यात्रा अधूरी है।

नदियों की बहुतायत के कारण आमोद-प्रमोद के लिये 'मछलियों का शिकार' भी एक शौक विद्यमान है। इस शिकार के लिये शासन द्वारा विधिवत अनुज्ञा प्राप्त की जा सकती है।सुदूर व दुर्गम नदियों में यह शिकार यद्यपि थोड़ा कठिन है फिर भी कुछ स्थल इस शौक के लिए सहज व सुलभ हैं यथा एसीकीबों में आड़ाटेक द्वीप, रूपुनुनी (सवाना क्षेत्र में) आदि। उल्लेखनीय है कि विश्व की सबसे भारी मछली (१०० किलोग्राम से भी अधिक भार वाली) आरापाइमा भी रूपुपनी सवाना क्षेत्र में पायी जाती है जिसका शिकार बेहद रोमांचक होता है।

इसी प्रकार 'सैंट जार्ज कैथीडरल' चर्च जिसका शिखर १३२ फीट ऊँचाई पर है, लकड़ी से निर्मित विश्व की दूसरी ऊँची इमारत है (प्रथम, जापान का बुद्ध हाल १६१ फीट ऊँचा है) इसी से कुछ दूर सिटी हाल व संसद भवन है जहाँ कई गिरिजाघर विद्यमान हैं वहाँ कई मंदिर व मस्जिद कारीगरी का सुंदर नमूना पेश करते नजर आते हैं। इसी प्रकार जार्जटाउन स्थित म्यूजियम में अमरीइंडियन लोगों द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तुएँ जहाँ दर्शकों का मन मोह लेती है वहाँ 'विविध वनस्पति उद्यान' (बाटेनिकल गार्डन) में उपलब्ध हजारों किस्म के पेड़-पौधे— 'वनस्पति ही जीवन है' का बोध कराते हैं। इस उद्यान का फूल 'वाटरलिली' अपने बड़े-बड़े पत्तों के कारण दर्शकों को सुखद आश्चर्य की प्रतीति कराता है। इसके बारे में कहा जाता है कि पाँच वर्ष तक का बच्चा इसके एक ही पत्ते पर बैठ सकता है।

हर पूजा-पाठ के बाद 'जय जगदीश हरे' की आरती, भारत की 'हर की पौढ़ी' पर गूँजने वाले आरती स्वरों की अहसास कराती है। पर्व-त्योहारों में दीवाली व होली (फागवा) उनके जीवन में उतना ही नूतन संदेश लाती है जितना अवध की दीवाली या ब्रज की होली भारतीयों के लिये। गांधी जयंती पर

'साबरमती के संत' की मूर्ति पर फूल चढ़ाये जाते हैं। यह देखकर श्रद्धा से सिर झुक जाता है उन भारतीय मूल के लोगों के प्रति जिनके कारण भारतीय संस्कृति का इतना सुंदर चित्र देखने को मिलता है। इस प्रकार सुंदर देश गयाना न सिर्फ अपने प्राकृतिक सौंदर्य से मन मोह लेता है वरन् भारत से हजारों मील दूर भारतीय संस्कृति का एक टिमटिमाता इंद्रधनुष प्रतिबिंब प्रतीत होता है।

□

साधना और आत्मदान के प्रतीक वियोगी हरि

प्रो. विजयेंद्र स्नातक

भारत के इतिहास में बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का इतिहास महात्मा गांधी के व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन से अत्यधिक प्रभावित है। इस युग में ऐसे अनेक व्यक्ति उत्पन्न हुए जिन्होंने महात्मा गांधी के संपर्क में आकर त्याग, तपस्या और अपरिग्रह को अपना जीवन-लक्ष्य बनाकर आजीवन राष्ट्रसेवा को भारतीय अस्मिता के साथ स्वीकार कर जीवन व्यतीत किया। इन्हीं त्यागी, तपस्वी, अपरिग्रही गांधीवादी व्यक्तियों में श्री वियोगी हरि का नाम पहली पंक्ति में आता है। श्री वियोगी हरि ने अविवाहित रहकर दलितों, शोषितों, पीड़ितों और हरिजनों के लिए विगत साठ वर्षों में जो कार्य किया वह गांधी जी के सच्चे अनुयायी की एक प्रेरणाप्रद कहानी है।

जन्मस्थान

श्री वियोगी हरि का जन्म मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड स्थित छतरपुर राज्य में संवत् १९५२ रामनवमी के दिन (सन् १९७६) हुआ था। छतरपुर ब्रिटिश शासनकाल में एक बहुत पिछड़ा राज्य था। आर्थिक दृष्टि से तो दरिद्र था ही, शिक्षा की दृष्टि से भी बहुत निम्नस्तरीय था। सारे राज्य में केवल एक हाईस्कूल जहाँ मैट्रिक तक की शिक्षा की व्यवस्था थी इसी छतरपुर में एक गरीब ब्राह्मण परिवार में वियोगी हरि का जन्म हुआ। दुर्भाग्य यह है कि छ: महीने के बालक हरि को छोड़कर पिता का स्वर्गवास हो गया। शैशव का नाम हरि प्रसाद द्विवेदी था। पिता की मृत्यु के बाद हरि प्रसाद के नाना श्री अच्छेलाल तिवारी ने इनका लालन-पालन किया और छतरपुर में सुलभ शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था की।इनके नाना को राज्य से १५ रुपये मासिक पेंशन मिलता था। नाना संगीतज्ञ थे। राज दरबार में संगीत के कारण उनकी प्रतिष्ठा थी। बालक हरि प्रसाद को उन्होंने शैशव में स्वयं पढ़ाया और स्कूली शिक्षा भी मैट्रिक तक दिलाई। हरि प्रसाद को स्वाध्याय का शौक शैशव से ही था। अत: हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि कई भाषाओं का ज्ञान उसने स्वाध्याय से ही अर्जित कर लिया था।

अध्यात्म और वैराग्यवृत्ति

भारतीय दर्शन की कुछ पुस्तकें हरिजी ने किशोरावस्था में पढ़ी थी। स्वामी विवेकानंद और स्वामी रामतीर्थ की पुस्तकों का उन्होंने भलीभाँति अनुशीलन किया था। इन पुस्तकों ने उनकी विचारधारा पर गहरा प्रभाव डाला और उन्होंने स्वामी विवेकानंद की भाँति आजीवन अविवाहित रहकर साहित्य-सृजन

और समाज सेवा का पुनीत व्रत ले लिया। इस व्रत की सूचना उन्होंने उस समय की जब उनके नाना उनके विवाह की पूरी तैयारी कर चुके थे। हरि प्रसाद ने अपने एक मित्र को पत्र लिखा और उसमें स्पष्ट रूप से लिख दिया कि, "मैं विवाह के बंधन में पड़कर साधारण गृहस्थ के रूप में जीवन यापन नहीं करना चाहता। नौन, तेल, लकड़ी की झंझट पालकर गरीबी में कष्ट भोगना मुझे स्वीकार नहीं है। अत: मैं आजीवन अविवाहित रहूँगा।" इस दृढ़ निश्चय की सूचना जब परिवार के लोगों को मिली, तब सारे घर में मातम छा गया। लेकिन हरि प्रसाद इस मातम से विचलित नहीं हुआ और अपने निश्चय पर दृढ़ बना रहा।

स्कूली शिक्षा और कविता प्रेम

वियोगी हरि छतरपुर के जिस हाईस्कूल में पढ़ते थे, उसमें शिक्षा तथा शिक्षकों का स्तर बहुत अच्छा था। हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार लाला भगवानदीन उस स्कूल में सेंकड मास्टर के पद पर काम कर रहे थे। विद्यार्थियों में साहित्य प्रेम उत्पन्न करने में उनका बड़ा योगदान था। बालक हरिप्रसाद ने लाला भगवानदीन से अंग्रेजी की पहली पुस्तक पढ़ी थी और उनके संपर्क से ब्रज भाषा के प्रति रुझान हुआ था। उनके काशी चले जाने के बाद उन्हीं के यह शिष्य बाबू गोविंददास जी सेकेंड मास्टर बने जो स्वयं अच्छे कवि थे और छात्रों की रचनाओं का बड़े प्रेम से संशोधन करते तथा उन्हें प्रोत्साहित करते थे। वियोगी हरि ने अपनी आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह' में लिखा है कि उसी समय एक व्यर्थ का व्यसन लग गया—वह था कविता रचने का शौक। यह एक ऐसा व्यसन था जो हरि जी का ध्यान और दुर्व्यसनों से हटाकर कविता पर केंद्रित किये रहा। इनकी कविताओं की चर्चा मंत्रिमंडल में तो होती ही था, राज-दरबार तक यह खबर पहुँच गयी थी कि हरि प्रसाद नाम का एक युवक अच्छी कविता करता है।उस समय छतरपुर राज्य के दीवान सुप्रसिद्ध हिंदी प्रेमी श्री शुकदेव बिहारी मिश्र थे। उन्होंने हरि जी को बुलाया और उनसे मिश्र बंधु विनोद के कार्य में सहायता देने को कहा। बारह रुपये मासिक वेतन की बात भी हुई, किंतु बातचीत का सारा वातावरण दरबारी था जो हरि जी के स्वाभिमानी मन को सुहाया नहीं और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में सहयोग करने से इनकार कर दिया। उसी समय छतरपुर महाराज विश्वनाथ सिंह जी की पत्नी महारानी कमल कुमारी देवी ने भी हरि जी की काव्य रचना के विषय में सुना और बुलाकर भक्ति विषयक पद रचने का आग्रह किया। महारानी स्वयं भी कृष्ण भक्ति विषयक पद रचना करती थीं और युगलप्रिया नाम से जानी जाती थी। हरि जी उनके साथ रहने लगे और उन्हें अपनी धर्म माता मान लिया। उनके साथ अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा की। यात्रा का सुयोग भी उस समय बना जो भक्ति और प्रेम विषयक रचनाओं में सहायक हुआ। उस समय हरिजी ब्रज भाषा में कविता लिखते थे। 'अनुराग वाटिका' शीर्षक पुस्तक में उनकी माधुर्य भाव की कविताएँ संकलित हैं। साहित्य विहार, छद्मयोगिनी, वीर हरदौल, कविकसन, तरंगिणी, श्रद्धाकण आदि उनकी लगभग साठ पुस्तकें हैं।

साहित्य सृजन

छतरपुर के निवास काल में हरि जी ने पाँच पुस्तकें लिखी थीं जिनका विषय माधुर्य भक्ति ही था। उन पुस्तकों में ब्रज भाषा की पद शैली की प्रधानता थी। कुछ कवित्त-सवैये और दोहे भी लिखे थे। इन पुस्तकों का प्रकाशन भी कुछ समय बाद हुआ। प्रेम शतक, प्रेम पथिक, प्रेमांजलि और प्रेम परिषद् लिखने के बाद अनुराग वाटिका में शुद्ध ब्रजभाषा का प्रांजल रूप प्रस्तुत किया। इन रचनाओं में महारानी युगलप्रिया की कृष्ण भक्ति ही प्रेरक थी। युगल प्रिया जी हरि जी के शील-स्वभाव और पांडित्य से

प्रभावित थीं किंतु दरबारी वातावरण में हरिजी का दम घुटता था अत: शीघ्र ही उससे मुक्त होने का उन्होंने उपक्रम किया। सौभाग्य से उनके एक मित्र ने उन्हें प्रयाग बुला लिया और वहाँ बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन जी से इनका परिचय करा दिया। टंडन जी उन दिनों हिंदी साहित्य सम्मेलन के निर्माण में संलग्न थे और उन्हें ऐसे व्यक्तियो की आवश्यकता थी जो हिंदी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ हो तथा पूरी निष्ठा से सम्मेलन का कार्य कर सके। हरि जी में ये सभी गुण भरपूर मात्रा में थे। सन् १९१८ में वियोगी हरि जी प्रयाग पहुँचे और टंडन के सहायक बनकर सम्मेलन के कार्य में पूरी निष्ठा से जुट गये। हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा के साथ सम्मेलन में हिंदी विद्यापीठ की स्थापना में भी हरि जी ने योग दिया और चार वर्ष तक विद्यापीठ का कार्य संचालन किया। उन दिनों विद्यापीठ में अवैतनिक रूप से पढ़ाने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक आते थे और पढ़नेवाले छात्रों में भी उच्चकोटि के विद्यार्थी थे। जब टंडन जी पंजाब नेशनल बैंक के मैनेजर होकर लाहौर चले गये तब हरि जी का मन सम्मेलन के अन्य कार्यकर्ताओं से मेल नहीं कर सका। उन्होंने निश्चय किया कि अब सम्मेलन में रहना ठीक नहीं है। उस समय सूरसागर का संपादन तथा संक्षिप्त संस्करण का प्रकाशन कार्य वे पूरा कर चुके थे। '**ब्रजमाधुरीसार**' का भी प्रकाशन हो चुका था। 'तरंगिणी' शीर्षक रचना छप चुकी थी। इस प्रकार हिंदी साहित्य से वियोगी हरि का संबंध गहरे स्तर पर जुड़ गया था।

विद्यालय निरीक्षण और समाज सेवा

सम्मेलन छोड़ने का निश्चय करते ही उनके पास पन्ना राज्य से विद्यालय के निरीक्षण के पद पर कार्य करने का निमंत्रण आया यह एक सौभाग्य की बात थी। शिक्षा का कार्य करने की इच्छा से हरि जी ने पन्ना राज्य में जाना तय कर लिया। पन्ना राज्य का विद्यालयों के निरीक्षण के साथ हरिजनों तथा दलित वर्ग को उठाने का काम भी उन्होंने स्वयं अपने हाथ में ले लिया। फलत: कई स्थानों पर हरिजनों के लिए स्कूल खोले और शिक्षा की व्यवस्था की। पन्ना राज्य में हरिजनों की दुर्व्यवस्था थी। मंदिर प्रवेश तो सर्वत्र निषिद्ध था ही, कुओं पर भी चढ़ना मना था। हरि जी ने पन्ना नरेश को पत्र लिखकर हरिजनों को मंदिर प्रवेश की अनुमति के लिए विशेष आग्रह किया। राज्य के सवर्ण लोग हरिजी के इस व्यवहार से अप्रसन्न हो गये और उन्होंने पन्ना नरेश को बहकाकर हरिजी को पन्ना राज्य से निर्वासित करा दिया। पन्ना छोडते समय वियोगी हरि जी ने पन्ना नरेश को स्पष्ट शब्दों में लिखा कि, ''मैंने राजद्रोह का कोई काम नहीं किया है। हरिजनों को मंदिर प्रवेश की स्वीकृति देकर आप एक पुण्य कार्य कर सकते हैं। हरिजनों की शिक्षा का स्तर उठाना भी राज्य का दायित्व है। अत: उसका निर्वाह होना चाहिए।''

नामकरण

पन्ना छोड़ने के बाद हरिजी ने अपना पुराना नाम पंडित हरिप्रसाद द्विवेदी हमेशा के लिए त्याग दिया। छतरपुर और पन्ना दोनों स्थानों से वियोग होने के कारण 'वियोगी हरि' नाम धारण कर लिया, जो आज सर्वत्र विख्यात है। इसी नाम से उन्होंने **विनय पत्रिका** का टीका लिखा जो पूर्वलिखित सभी टीकाओं की त्रुटियों का परिहार करनेवाली एक प्रामाणिक टीका सिद्ध हुई। यह एक महान कृति के रूप में समादृत है। साहित्य जगत में इस टीका से हरिजी का स्थान मूर्धन्य साहित्यकारों में आ गया।

भावना में परिवर्तन

श्री वियोगी हरि की जीवन-साधना के दो मुख्य अंग हैं। उन्होंने साहित्य द्वारा जन संपर्क स्थापित

किया था। भक्ति और प्रेम उनकी साहित्य-साधना के विषय थे। टंडन जी ने भी उन्हें हिंदी साहित्य की प्राचीन ब्रजभाषा परंपरा से जोड़ा था। प्रयाग और पन्ना राज्य में बारह वर्ष रहकर उन्होंने अनुभव किया कि भारतवर्ष केवल ब्रिटिश शासन में ही नहीं पिस रहा है, बल्कि अंध-विश्वास और जड़ परंपराओं के बोझ से भी दबा हुआ है। रूढ़ियों की दासता ने इस देश के शौर्य, पराक्रम, साहस और उत्साह को नष्ट कर दिया है। वीरत्व भाव को जागृत करने से, आत्म गौरव और स्वाभिमान को पुन: उद्दीप्त करने से ही राष्ट्र का कल्याण संभव है। इस भावना से उन्होंने **'वीर सतसई'** शीर्षक दोहा शैली में एक सतसई लिखी जिसमें वीरत्व भाव को पूरे उत्साह के साथ स्थान दिया। अज्ञान और अंधकार में डूबी जाति को जाग्रत करने की दिशा में यह सतसई साहित्य जगत् में सराहना का पात्र बनी और सन् १९३२ में मुजफ्फरपुर के अधिवेशन में हिंदी साहित्य सम्मेलन का सर्वोच्च प्रतिष्ठित 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' वियोगी हरि जी को प्राप्त हुआ। वीर सतसई में जीवन, जागृति, बल और बलिदान की जिस उदात्त भावना का वर्णन है, वह सोई हुई जाति को जगाने में दिव्यसंदश का काम करता है। यह वीर सतसई छायावादी कविता के पूर्व यौवन काल में लिखी गई और लोकप्रिय हुई यह विस्मयजनक तथ्य है। 'वीर सतसई' ब्रजभाषा की रचना है लेकिन भाव और विचार में युगबोध से पूरी तरह सम्पृक्त है।

इस रचना के बाद वियोगी हरि जी का ध्यान राष्ट्रीय जागरण की दिशा में गया। महात्मा गांधी भारत के क्षितिज पर अपने पूरे तेज और वर्चस्व के साथ छा गये थे। राष्ट्रप्रेम की बात महात्मा गांधी के बिना अधूरी थी। लोकमान्य तिलक के निधन के बाद संपूर्ण देश को अपनी ओर आकृष्ट करने की शक्ति एकमात्र महात्मा गांधी में सिमट गयी थी। वियोगी हरि जी गांधी के प्रति आकर्षित हुए। साहित्य के साथ अब तक जो गहरा सरोकार था वह गांधी जी के संपर्क से ढीला पड़ने लगा। गांधी जी भी ऐसे व्यक्तियों की तलाश में रहते थे, जो देशभक्ति के साथ नि:स्वार्थ भाव से सेवा का व्रत लेकर उनके साथ काम कर सकें। वियोगी हरि के जीवन दर्शन में सेवा-भाव प्रमुख स्थान बना चुका था। गांधी जी के संपर्क में आने पर हरिजी को साहित्य और हरिजन सेवा दोनों को एक साथ करने का मौका मिला। गांधी जी के अंग्रेजी साहित्य हरिजन सेवक का हिंदी रूपांतर प्रकाशित करने का दायित्व हरिजी को सौंपा गया। जिसे लंबे अर्से तक वियोगी हरिजी ने बड़ी कुशलता पूर्वक निभाया। उसके बाद गांधीजी के आश्रमवासी अन्य लोगों से हरिजी का परिचय हुआ। ढक्कर बापा, मश्रूवाला, विनोबाभावे आदि उच्चकोटि के विचारक, चिंतक एवं राष्ट्रप्रेमी व्यक्तियों ने हरिजी के जीवन की दिशा में विराट परिवर्तन किया। गांधी जी संतो की वाणी के प्रेमी थे। हरिजी साहित्यकार संत थे। संत साहित्य को इन्होंने अपनी साहित्य-साधना का आधार बना लिया। संत सुधासार, संतकाव्य संग्रह, संत वचनावली आदि के प्रकाशन से वियोगी जी का नाम संतकाव्य प्रेमियों तथा पारखियों में शीर्षस्थ हो गया। जिस श्रद्धा, निष्ठा और भक्ति भाव से हरिजी ने संत वाणी का अध्ययन और संकलन किया है वह उनके भीतर छिपे संत भाव का परिचायक है। यों तो हरिजी ने भारत के प्राय: सभी संतों की वाणी संकलित की किंतु कबीर, नानक, दादू, रैदास और नामदेव के प्रति अगाध श्रद्धा से अपने मनोभाव व्यक्त किये हैं। नानक की वाणी को वह सर्व धर्म समभाव: के लिए उपयोगी मानते थे।

सर्वधर्म समभाव:

सर्वधर्म समभाव: गांधी जी की विचारधारा का मेरूदंड था। वियोगी हरि जी ने भी उसे पूरी निष्ठा के साथ स्वीकार किया। गौतम बुद्ध को वे उतनी ही पूज्य बुद्धि से देखते थे जितनी श्रद्धा राम और कृष्ण के प्रति उनके मन में थी। बुद्ध की वाणी 'धम्मपद' उनकी दैनिक पाठ की पुस्तक थी। गीत और धम्मपद दोनों का पाठ करके उन्हें शांति मिलती थी। संत साहित्य के संपर्क में आने तथा धार्मिक ग्रंथों के

संप्रदायविहीन भाव से अध्ययन करने से उन्हें मानवमात्र के प्रति प्रेम और समूची मानवता से सम्मान की श्रद्धा हो गई थी। भगवान बुद्ध की वाणी को वे सदा उद्धृत करते हुए कहा करते थे कि वैर की शक्ति वैर से नहीं होती, वैर रहित होकर-अवैर-होकर ही हम वैर को शांत कर सकते हैं। आज हमारे राष्ट्र को इस वाणी की आवश्यकता है, यही आज के संदर्भ की सबसे सार्थक वाणी है।

गांधीवाद में आस्था

हरिजन सेवक संघ से वियोगी हरि जी का संबंध सन् १९३२ से हुआ। ठक्कर बापा संघ के प्रमुख कार्यकर्ता थे। अपने सहयोगियों से काम लेने में कठोर अवश्य थे किंतु कार्य के प्रति निष्ठावान व्यक्ति को पूरा आदर-स्नेह देते थे। हरिजी उनके स्नेह भाजन बन गये और हरिजन सेवक संघ के सक्रिय कार्यकर्ताओं की श्रेणी में स्थान पा गये। हरिजन सेवक संघ का मूल ध्येय रचनात्मक कार्य करना था। हरिजन सेवक संघ भाषण और लेखन से चलनेवाली संस्था नहीं थी। प्रत्येक कार्यकर्ता को महात्मा गांधी के बताए मार्ग पर चलना होता था। अपना निजका सारा काम स्वयं करना अनिवार्य था। जातिगत भेदभाव संस्था में नहीं था। संघ के सभी कार्यकर्ता समान थे और अस्पृश्यता का कहीं नाम नहीं था। वियोगी हरिजी ने इन सभी मान्यताओं को अपने जीवन में पूरी तरह उतार लिया था। ब्राह्मण और शूद्र शब्द उनके कोश से बहिष्कृत हो गये थे। मनुष्य और मानवता ने कोश में सर्वोच्च स्थान पा लिया था।

संत साहित्य प्रेम

संत साहित्य का अध्ययन करते समय उन्होंने कबीर और दादूदयाल की वाणी में अनहदनाद और ब्रह्मनाद जैसे शब्दों को अनेक बार पढ़ा। ब्रह्म साक्षात्कार की बेला में अनहदनाद होता है ऐसा उन्होंने पढ़ा और सुनाया किंतु हरिजी कहा करते थे कि ये सब शब्द बेमानी है। ब्रह्म केवल एक ही नाद सुनता है और उस नाद का नाम है '**आर्तनाद**'। आर्तनाद सुनकर विष्णु भगवान नंगे पाँव दौड़े चले आते हैं। यह जनश्रुति इसी आर्तनाद की पुष्टि करता है। हरिजी ने आर्तनाद को जीवन भर सुना और शोषितों-पीड़ितों के दुख दूर करने में सदा लगे रहे।

विशिष्ट व्यक्तियों का संपर्क

वियोगी हरिजी के जीवन में चार व्यक्तियों का प्रमुख स्थान रहा है। पहले व्यक्ति बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन, दूसरे व्यक्ति महात्मा गांधी, तीसरे व्यक्ति ठक्करबापा और चौथे व्यक्ति थे सेठ घनश्यामदास बिड़ला। इन चारों महानुभावों के निकट संपर्क में रहे किंतु अपने जीवन-प्रवाह में किसी ऐसे तत्व का प्राधान्य नहीं होने दिया जो लोकेषणा या वित्तेषणा से उन्हें पथ-भ्रष्ट करने में समर्थ होता। टंडन जी परम राष्ट्रभक्त थे, हिंदी भाषा और भारतीय साहित्य-प्रेम से उन्होंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया था किंतु कालांतर में वे सक्रिय रूप से राजनीति में चले गये। वियोगी हरि ने इनसे राष्ट्रभाषा और भारतीयता का प्रेम ही ग्रहण किया, राजनीति की दलदल में नहीं गये। महात्मा गांधी के निकट संपर्क में रहे। उनसे केवल मानवता की सेवा का मंत्र लिया। सत्याग्रह, असहयोग या आंदोलनात्मक किसी कार्य में भाग नहीं लिया। ठक्करबापा के साथ अन्य सहयोगी की तरह रहे किंतु कार्यक्षेत्र हरिजन सेवा तक ही सीमित रखा। हरिजन सेवा के लिए किसी बड़े पद या वेतन आदि पदार्थों की याचना तो क्या कभी इच्छा भी व्यक्त नहीं की। सेठ घनश्यामदास के परम स्नेहभाजन रहे किंतु उनसे अपनी आर्थिक स्थिति की चर्चा तक नहीं की। सेठ जी से एक बार कहने पर ही पुष्कल धनराशि पा लेना सहज था किंतु हरिजी ने कभी मुख नहीं खोला। उनके साथ रहनेवाले बताते हैं कि उन्हें कभी क्रोध

की मुद्रा में किसी ने नहीं देखा। काम, क्रोध, लोभ, मोह को जीतने वाला व्यक्ति संत नहीं तो और क्या होगा ! अपने हाथ से सूत कातकर अपने योग्य कुरतों का कपड़ा तैयार करनेवाले अपरिग्रही को संग्रह और संचय की आवश्यकता ही क्या हो सकती है !

जीवन प्रवाह के तीन पड़ाव

वियोगी हरिजी की जीवन यात्रा पर दृष्टि डालने पर हम उन्हें तीन पड़ावों पर ठहरते और काम करते हुए देख सकते हैं। पहला पड़ाव साहित्य प्रेम था जो आजीवन उनके साथ बना रहा किंतु उसकी दिशाओं में परिवर्तन आता रहा। पहले भक्ति और प्रेम का काव्य लिखा, फिर राष्ट्रोत्थान के लिए वीर काव्य लिखा तदंतर संतकाव्य की शरण में आकर संतों की शीतल छाया में विश्राम किया।यात्रा का दूसरा पड़ाव राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए काम करने का था। हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने उन्हें सन् १९४६ में करांची अधिवेशन का सभापति बनाया था और सन् १९४८ में हैदराबाद में भी सम्मानपूर्ण स्थान देकर राष्ट्रभाषा हिंदी-सेवा का अवसर दिया था। हिंदी सेवा को हरिजी राष्ट्रसेवा का ही काम मानते थे। महात्मा गांधी ने भी इसीलिए सन् १९१९ में मद्रास में हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की थी। राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए वियोगी हरि की कार्यपद्धति प्रादेशिकता की संकीर्णता से ऊपर थी। राष्ट्रीय एकता की कड़ी के रूप में उन्होंनो हिंदी को स्वीकार किया था और संविधान में स्वीकृत सभी भाषाओं को उचित सम्मान देते हुए वे हिंदी-प्रचार का कार्य करते थे। उनके भाषणों से अहिंदी भाषी जनता भी प्रसन्न होती थी और उनकी स्थापना का आदर करती थी।

अस्पृश्यता निवारण

वियोगी हरिजी की जीवन-यात्रा का साठ वर्ष का समय हरिजन सेवा के कार्यों में व्यतीत हुआ। सन् १९३२ में उनका संबंध हरिजन सेवक संघ से हुआ था। बहुत लंबे समय तक वे संघ के सचिव और अध्यक्ष रहे। देश के विभिन्न प्रदेशों में फैले हरिजन सेवक संघ के अधीनस्थ आश्रमों तथा विद्यालयों का संचालन करते रहे। इस कार्य के लिए उन्हें बहुत अधिक देशाटन करना पड़ा। भारत की दलित, पीड़ित, शोषित जनता वियोगी हरि को अपना अनन्य आत्मीय बंधु मानती थी। हरिजी अपने को सेवक ही कहते और मानते थे। उन्होंने कभी अपने को साहित्यकार या कवि नहीं माना, सदा साहित्य प्रेमी या काव्य प्रेमी ही कहा। हरिजन सेवक संघ में वे वर्षों रहे। अस्पृश्यता निवारण के लिए उन्होंने सक्रिय प्रयास किये। आश्रम में अस्पृश्यता जैसा शब्द भी कभी स्थान नहीं पा सका। उनके प्रिय संतों में कबीर, दादू और रैदास थे जिनको सवर्ण लोग अस्पृश्य ही मानते होंगे किंतु आज उनकी वाणी सबको पवित्र कर रही है।

समाज सेवा ही परम धर्म

अपने जीवन के अंतिम दिनों में उनका मन देश की वर्तमान स्थिति को देखकर खिन्न था। लोकतंत्र जिस रूप में हमारे देश में उभरा है वह बहुत स्वच्छ, शुद्ध और नीतिवद्ध नहीं है। लोकतंत्र में पूरी आस्था वाले विचारक भी वर्तमान लोकतंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार से दुखी हैं। यही दुख हरिजी को भी सालता था। उनकी मान्यता थी कि लोक सेवक नेता को हाथ में विवेक का दीपक लेकर, साधना के कठिन मार्ग पर निःस्वार्थ भाव चलना चाहिए। गांधी जी इसी मार्ग के पथिक थे। आज हमारे नेता उस मार्ग से भटक गये हैं। मनुष्य को प्रकाश के लिए अपने भीतर के दीपक से प्रकाश लेना चाहिए, यही बुद्ध का उपदेश था। हम आज इस उपदेश को भूल गये हैं। राष्ट्रनिर्माण के लिए त्याग, तपस्या, बलिदान और आत्मोत्सर्ग की आवश्यकता होती है। हमारे देशवासी इस मंत्र को समझ लें और अपने चरित्र में

परिणत करें तभी देश का निर्माण हो सकता है। जैसा कि हमने पहले लिखा है कि वियोगी हरिजी ने युवावस्था में ही अविवाहित रहकर राष्ट्रसेवी का संकल्प कर लिया था। अत: उनका अपना कोई घर-परिवार नहीं था। छतरपुर से संबंध विच्छेद करने पर वे हरि प्रसाद द्विवेदी से वियोगी हरि हो गये थे। अत: गृहस्थी का कोई जंजाल-प्रपंच नहीं फैलाया। एक बालक भगवदत्त शिशु को पुत्रवत् मानकर उसके पास रहे और ९ मई १९८८ को अपराह्न दो बजे शिशु के घर पर ही प्राण विसर्जन कर इहलोक लीला संवरण की। उनकी अमर कृतियाँ जो शब्दों में बँधी है और उनके पुण्यकर्म जो सेवा-साधना से स्पंदित हैं सदा जीवित रहेंगे और जनमानस कों मानवता की सेवा की प्रेरणा देते रहेंगे।

□

साहित्य और जीवन के शिल्पी प्रेमेंद्र मित्र

डॉ. रणजीत साहा

बांग्ला साहित्य के साहित्य महारथी कवि, कथाकार, साहित्यकार और मनीषी प्रेमेंद्र मित्र का निधन एक युग की समाप्ति का सूचक है। साहित्यिक-सांस्कृतिक और ऐतिहासिक तीनों ही चुनौतियों को निरंतर झेलते रहने और एक के बाद नये प्रस्थानों के अपराजेय शिल्पी नामांतर थे प्रेमेंद्र मित्र। वे व्यक्ति नहीं संस्था थे और बीसवीं सदी के नवें दशक (देहावसान ४ अप्रैल, १९८८) तक महत्त्वपूर्ण साहित्य-सत्ता के तौर पर विद्यमान रहे। ऐसा नहीं था कि उनका व्यक्तित्व बड़ा रोबीला, भव्य या प्रभावशाली था लेकिन अपनी सादगी, सहजता आत्मीयता और विनोद प्रियता के नाते वे सबके लिए समान रूप से सम्मान्य और श्रद्धेय थे।

एक साहित्यिक के तौर पर जीवन और साहित्य के तमाम उत्कर्ष और उपलब्धियों को पाने के लिए प्रेमेंद्र को कई विपरीत स्थितियों से जूझना और टकराना पड़ा था—कभी संयोगवश, कभी औपचारिक ढंग से और कभी अपनी जन्मजात सनक की वजह से। इन विरोधी परिस्थितियों के हाथों उनका निर्माण हुआ था और विधना ने उन्हें एक बार नहीं, कई-कई बार अपनी चाक पर चढ़ाया और कई तरह से गढ़ा। यह प्रेमेंद्र मित्र ही थे, जो नियति की निष्ठुर उंगलियों के बीच भी, अपनी रचना-धर्मिता और अपनी पहचान को बनाये रखने में सफल हुए और अपने कृतित्व के बल पर स्वयं को साहित्य एवं संस्कृति के सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित भी कर सके ।

प्रेमेंद्र मित्र का जन्म १९०४ ई. (संभवत: सितंबर में किसी दिन) अपने पैतृक घर, वाराणसी में हुआ था। उनके पूर्वज बंगाल के कोन्नगर स्थान के रहने वाले थे। पिता ज्ञानेंद्रनाथ मित्र रेलवे में कर्मचारी थे। माता सुहासिनी देवी का स्नेहांचल बचपन में ही उठ गया तो बालक प्रेमेंद्र को लगा कि अब जीवन भर, नंगे सर तपती धूप में ही चलते रहना है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में आँधी-तूफान बरपा कर देने वाले और नये प्रतिमान स्थापित करनेवाले प्रेमेंद्र को अपनी निश्चित जन्म-तिथि, नाम-राशि का जन्म-नक्षत्र का स्मरण नहीं लेकिन वह बताया करते थे कि मेरी जन्म कुंडली ग्रहों-नक्षत्रों और राशियों से निर्धारित नहीं हुई बल्कि किसी अज्ञात कुलशील-उत्पन्न निर्मम धूमकेतु के हाथों निर्मित हुई थी।

कुछ वर्ष वाराणसी में रहने के बाद, प्रेमेंद्र गाजीपुर और फिर वहाँ से मिर्जापुर चले गये, जहाँ उनके नाना रेलवे (ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन उच्चपदस्थ कर्मचारी) डी.एम.ओ. थे। आरंभिक शिक्षा मिर्जापुर में हुई। बाद में इनका दाखिला कलकत्ता के भवानीपुर स्थित सबर्बन स्कूल में हुआ, जहाँ से

प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद औपचारिक पढ़ाई आगे नहीं बढ़ सकी। वैसे कलकत्ता में ही स्कॉटिश चर्च कॉलिज में भरती हुए लेकिन यह सोचकर पढ़ाई छोड़ दी कि कृषि से संबंधित नयी विधियाँ सीखी जाय ताकि खेती-बाड़ी सुधरे। ऐसा ही कुछ तय कर पहले तो ढाका स्थित जगन्नाथ कालेज में विज्ञान की पढ़ाई के लिए गये और फिर उलटे पाँव चले आये। श्रीनिकेतन— शांतिनिकेतन की भागिनी संस्था— में। यहाँ तब रवींद्रनाथ ठाकुर अपने विदेशी भारत बंधु के.एल. एलर्म्हस्ट के सहयोग से भारतीय ग्राम परिवेश और कृषि जीवन के तमाम बुनियादी सरोकार के साथ कृषि एवं सहकारिता आंदोलन को प्रयोगात्मक और व्यावहारिक स्वरूप प्रदान कर रहे थे। लेकिन ऐसा लगता है कि युवा प्रेमेंद्र तब तक अपने भविष्य को निरूपित या निर्धारित कर पाने के लिए स्वयं बहुत आतुर या आग्रही न थे। वर्ना वे रवींद्रनाथ जैसे महान और शताब्दी-पूर्व व्यक्तित्व से अवश्य ही कोई प्रेरणा ग्रहण कर सकते थे। हालाँकि श्रीनिकेतन के तत्कालीन संचालक सुभाषचंद्र मजुमदार ने उन्हें वहाँ से भाग जाने को प्रेरित भी किया था लेकिन एलर्म्हस्ट साहब ने रोक ही नहीं लिया बल्कि खाना-पीना-रहना सब मुफ्त कर दिया। लेकिन बाद में वह स्वयं वहाँ से यह बहाना निकल कर खिसक गये कि घर जाकर अपने कपड़े-लत्ते तो ले आऊँ। संभवत: कुछ प्राप्त नहीं कर पाने की वंचना ने ही, सब कुछ पा लेने या उससे आश्वस्त हो लेने की आस्था या श्रद्धा उनके मन में नहीं रही थी। प्रत्यक्ष तौर पर रवींद्रनाथ का जबरदस्त प्रभाव अस्वीकार करने के बावजूद उनके अवचेतन पर यह प्रभाव बना रहा और जोकि उनके सृजन के आरंभिक दौर में, एक तरह से रवींद्रनाथ के सकारात्मक विरोध से आरंभ हुआ।

लेकिन साहित्य को अपनी सेवा देने के पूर्व, वे कभी किसी स्कूल में अध्यापन कार्य करते रहे तो कभी किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला के सहयोगी के बतौर जीविका चलाते रहे। एक बार विदेश जाने की भी सूझी। अमेरिका जाकर पढ़ाई पूरी करने की सारी तैयारी धरी की धरी रह गयी। बना-बनाया पासपोर्ट 'डस्टबिन' में डाल दिया और बुदबुदाये 'घत् तेरे की' फिर चले आये झाझा (बिहार का एक मनोरम पहाड़ी कस्बा) ताकि शांति से जीवन कटे। छोटा-सा एक घर भी किराये पर ले लिया लेकिन फिर वही 'तलवे तले सरसों' वाली बात चरितार्थ हुई वापस कलकत्ता चले आये। यहीं कलकत्ता विश्वविद्यालय की रामतनु लाहिड़ी प्रयोगशाला में शोध-सहायक की हैसियत से जुड़ गये। छिटपुट रचनाएँ तो स्कूली पढ़ाई के दौरान ही लिख रहे थे। इन्हीं दिनों १९२४ में पहली कहानी 'प्रवासी' में प्रकाशित हुई थी। शीर्षक था—शुधु किरानी-(सिर्फ किरानी)। कुछ दिनों बाद दूसरी कहानी छपी, शीर्षक था— 'गोपन चारिणी'।'प्रवासी' के अलावा वे मुख्य रूप से जिन पत्रिकाओं में लिख रहे थे—वे थीं 'बिजली' (साप्ताहिक) तथा अजित दत्त और बुद्धदेव बसु द्वारा संपादित तथा ढाका से प्रकाशित 'प्रगति'।

जिस युवा प्रेमेंद्र ने कभी कसम खायी थी कि चालीस की उम्र तक कुछ नहीं लिखना, कहीं नहीं छपना–वही अब रातोंरात लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो गये। संकल्प—विकल्प और विमर्श में परिणत हो गया। लेकिन एक सृजनधर्मा रचनाकार का मनोरथ विफल नहीं हुआ। और अब वे केवल कवि या कथाकार ही नहीं थे। अपनी विपुल एवं विविध रचनाधर्मिता के चलते एक साथ प्रबंधकार, उपन्यास-कार, आलोचक, समीक्षक और संपादक भी थे। कुल मिलाकर समग्र, संपूर्ण और समर्पित रचनाकार।

लेकिन जीवन का संघर्ष क्रमश: तीव्र होता चला गया। सक्रिय साहित्य जीवन के साथ-साथ कभी किसी पत्रिका का संपादन किया तो कभी किसी फिल्म के लिए संवाद लिखा तो कभी उनका निर्देशन किया। वे सुभाषचंद्र द्वारा संचालित 'बांग्लार कथा' और 'फारवर्ड' अखबार के साथ-साथ 'बंगश्री' पत्रिका के संपादन से भी जुड़े रहे थे। लेकिन किसी जीविका या नौकरी से स्थायी तौर पर जुड़ न पाये। दरअसल बँधी-बँधायी नौकरी उनके स्वभाव के विरुद्ध थी। पहले भी साहित्यिक बंधुओं ने अपने आग्रह

से नौकरी का जुगाड़ किया था। प्रसिद्ध साहित्यकार शिवराम चक्रवर्ती ने उनकी तरफ से आवेदन किया तो बंगाल इम्यूनिटी में अनुबंधित नौकरी मिली लेकिन तभी एक फिल्म कंपनी ने अधिक वेतन देकर विज्ञापन अधिकारी के तौर पर बुला लिया।

इधर साहित्य जगत में अपनी आरंभिक कृति 'पाँक' (कीचड़, लघु उपन्यास, १९२७) विवादास्पद ढंग से चर्चित हो चली थी। यह कलकत्ता की गंदी बस्तियों में रहने वाले मजदूरों, श्रमिकों और बेकारों के संघर्ष और जद्दोजहद का अंतरंग और प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत करने वाली और चौकाने वाली रचना थी। यह उपन्यास पहले 'बिजली' में धारावाहिक तौर पर प्रकाशित होना शुरू हुआ लेकिन किसा विरोधी के चलते ही, 'कालिकलम' पत्रिका में प्रकाशित होना शुरू हुआ, जिसके संपादन-मंडल में दो वर्षों (१९२६-२८) तक वह भी सम्मिलित थे। 'पाँक' ने उन्हें अनावश्यक विवाद में ला पटका। इसके मूल में यथार्थवादी चित्रण और अतिवादी मूल्यों का सीधा टकराव था। दो विश्व-युद्धों के बीच सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर जो लड़ाइयाँ लड़ी जा रही थीं—उनकी लाग-लपेट में फँसे साहित्यकार, अपने-अपने ढंग से नयी चुनौतियों के बीच निरंतर बदलती जा रही परिस्थितियों में अपने लेखन-दायित्व का निर्वाह कर रहे थे। श्री मित्र ने भी इस सामाजिक अनुरोध के समानांतर 'बेनामी बंदर' (१९३०), मृत्तिका (१९३०), पंचशर (१९३२) आदि कथाकृतियों का सृजन किया। 'बेनामी बंदर' में उनकी दो प्रसिद्ध कहानियाँ 'शुधुकिरानी' और 'पुन्नाम' प्रकाशित हुईं।

वस्तुत: प्रेमेंद्र मित्र की आरक प्रसिद्धि कवि के रूप में ही रही। वे किशोरावस्था से ही कविताएँ लिखते रहे थे, भले ही वे देर से प्रकाशित हुईं। इन रचनाओं में सहज आवेग था और स्वर में उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता। कवि की तरह उनकी कविताओं का शैशव, कैशोर्य और यौवन जिन मौसमों के साथ बीतता चला गया, उनमें पावस-शिशिर-हेमंत और बसंत कब आये और विदा हुए, कुछ पता ही नहीं चला। जवानी प्रखर धूप में तपती-तचती रही और बिजलियों की आँख-मिचौनी के बीच अपनी राह ढूँढ़ती रही। लेकिन उनमें किसी तरह का दम्भ न था। उनके समकालीनों में जहाँ समसामयिक मुहावरों को कविता में गूँथने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी—श्री मित्र बड़ी सावधानी और आत्मीयता से अपने जीवनानुभव के साथी बनाकर उन असफल, शोषित और वंचित लोगों को वाणी दे रहे थे—जो औरों के उत्कर्ष और प्रत्यान के लिए अपने स्वेद-रक्त और जीवन का बलिदान किसी प्रतिदान की अपेक्षा किये बिना करते रहे हैं। उन्हें न तो अपने अधिकार का मान है और ना ही वे अपनी अभिव्यक्ति में तिक्तमुखर होते हैं। अन्यथा प्रयोजन से दूर ऐसे लाखों मेहनतकशों की वंचना में सम्मिलित कवि किसी तरह की कुंठा या प्रतिद्वंद्विता से दूर रहकर साथ जींवनानंद को, सहज अनुभूति को कविता में अभिव्यक्त ही नहीं करता बल्कि इस जीवन का मंत्र भी मानता है। अपनी एक प्रसिद्ध कविता 'पाओं दल' (१९२५) में कवि कहता है:

'वे कौन हैं भला, जिनके पाँव
पालकी पर चढ़ते-चढ़ते लुंज हो गये हैं
—उन्हें छोड़ो

बल्कि तुम उन नंगे और मजबूत क़दमों के साथ
कदम मिलाकर चलो
जो सबके लिए आगे बढ़ रहे हैं।
ऐसे अपाहिज और अपवित्र पाँव
जो लोगों के सिरों पर चल-चल कर

उन्हें कुचल-कुचल कर
पाप से भारी हो गये हैं
उनसे,
इस पवित्र धरा को अपमानित और लांछित मत होने दो ।'
('प्रथमा', १९२६ से)

सागर से वापसी

नीला ! और नीला ।
कह नहीं सकता
उसमें हरे रंग का संस्पर्श है या नहीं।
थोड़ा या बहुत... नीला ही है... नीला ही होगा
फीका, हल्का या गाढ़ा
और इनके बीच शून्यता की अनुभवी
अनछुई-सी मुस्कान

जिसमें शामिल हैं पानी पर चक्कर काटने वाले
कुछ-एक सारस ।

मैं सोचता हूँ
कहता हूँ कि सागर के मन में कहीं यह रहा हो
कि सफेद फेन से
दूधिया शंख की तरह अपने डैने फैलाये
—आकाश की, तलाशी ली जाय।

यह मन भी बड़ा ही अजीब है
झूठमूठ ही मनचाही उपमा चाहता रहता है।
नहीं है... जो कहीं नहीं है।

यह हृदय ही दो आँखें खोले गा उठता है
बस यही है...यही है।

मिट्टी, पेड़ और किनारे
सबको रखकर परे
अपने लंबे चौड़े डैने फैलाकर आने वाली
ज्वारभरी लहरों में, अब जलकुंभी तैर रही है

किनारे से उतर आया जल
बादल तारे और हवा
और समय के नीले अंतराल में
अविराम की जानेवाली उद्दाम अल्पना
पता नहीं, क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं
अपने मन से यह जानते न जानते

पहुँच जाती है वह स्टीमर
आज कल और परसों के अनजाने छोर पर ।
('सागर थेके फेरा' से)

अपने चौगिर्द फैली तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों को स्वर देते हुए कवि प्रेमेंद्र की परवर्ती कविताएँ मानवीय संदर्भों और प्राकृतिक सौंदर्य से अनुबद्ध होकर क्रमशः सौम्य, प्रगीतात्मक और भास्वर होती चली गयीं। ये कविताएँ स्थानीय दबावों या व्यक्तिगत अनुरोधों की सीमा से मुक्त होकर असीम और व्याप्त होने लगीं और उनमें प्राकृतिक उपादान और बिंब विधान सघनतर होते चले गये।

प्रेमद्र मित्र का आरंभ से ही, बंगाल के सबसे चर्चित और विवादास्पद साहित्यिक मंच 'कल्लोल गोष्ठी' से संपर्क रहा। तीसरे दशक के शुरू में अपने साहित्यिक बंधु अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त (सहपाठी भी) बुद्धदेव बसु आदि के साथ जो प्रगाढ़ साहित्य संपर्क था, वह 'कल्लोल' (गोष्ठी की पत्रिका) से व्यक्त हुआ। 'द्वार खोलो... द्वार खोलो... शेष रात्रि के प्रहरी' (१९२६) कविता से प्रेमेंद्र ने काव्य के मुख्य द्वार से अपने आगमन की सूचना दी।

तब साहित्य-संस्कृति और साधना के क्षेत्र में रवींद्रनाथ ठाकुर (१८६१-१९४१) मध्याह्न-सूर्य की तरह दिप रहे थे। कोई ऊपर आँख उठाकर भी देखे तो आँख चौंधिया जाय ऐसा था वह प्रखर-प्रचंड ताप और सौम्य व्यक्तित्व। लेकिन बहुत कुछ होते हुए भी, रवींद्रनाथ का नाम-गुण प्रभाव ही तो सब कुछ नहीं था। अपने युग सत्य को, जीवन-जगत-रचना और रचनाकार के अनुभव-वैविध्य और वैचित्र्य को नयी भाषा और मुहावरे में प्रस्तुत करना था। इसलिए बहुत-से युवा रचनाकारों ने उक्त गोष्ठी के माध्यम से इस प्रखर 'रवींद्रायन' का प्रतीक के तौर पर विरोध किया था। इस विरोधी खेमे के प्रमुख युवा हस्ताक्षरों में प्रेमेंद्र भी थे। अपने प्रथम काव्य संकलन 'प्रथमा (१९२६) के माध्यम से उन्होंने न केवल आदर्शवादी मूल्यों का मखौल ही उड़ाया था बल्कि तमाम अर्जित और आरोपित प्रतिमानों एवं बद्धमूल संस्कारों को समूल उखाड़ फेंकने की तैयारी शुरू हो गयी थी। रवींद्रनाथ की रचनात्मक प्रतिभा के कायल होते हुए भी कल्लोल गोष्ठी के सदस्य उनके ऐतिहासिक नैरंतर्य या प्रभाव-सातत्य के मुखर विरोधी थे। यह विरोध व्यक्तिगत या समष्टिगत नहीं था—एक गोष्ठी का एकाधिकार के प्रति नकारात्मक विरोध था—ताकि समाज और साहित्य पर पड़नेवाले अभिजात और औपनिवेशिक दबावों और आम लोगों की आकांक्षाओं को—उनके तेवर को—नवीन स्वर, स्वरूप और संकल्प प्रदान किया जा सके ।

यह मुखर विरोध क्रमशः सघनतर होता चला गया और युग पुरुष रवींद्रनाथ की मृत्यु से ही इस विरोध का शमन हो सकता था। इस महाशून्यता ने जहाँ असंख्य पाठकों और रचनाकारों को आहत और विहव्ल किया, वहीं प्रौढ़ता प्राप्त करते हुए युवा कवियों की दूसरी पंक्ति ने युगीन हताशा और आशा आकांक्षा को नये सिरे से व्याख्यायित और परिरेखित किया। इस प्रयास में, प्रेमेंद्र मित्र के साथ अचिंत्यकुमार सेनगुप्त तथा बुद्धदेव बसु की 'त्रयी' कार्यरत थी। हालाँकि पाठकों का एक बहुत बड़ा वर्ग इनके प्रयासों को खुले मन से स्वीकार या सराह नहीं पा रहा था। दरअसल ये साहित्य को एक खास ढाँचे में देखने या रखने के आग्रही थे। यथास्थिति बनाये रखने वाले कुछ ऐसे ही साहित्यकारों पर व्यंग्य करते हुए प्रेमेंद्र मित्र ने अचिंत्यकुमार सेनगुप्त के साथ बड़ा ही चुटीला उपन्यास लिखा 'बाँका लेखा'।जिसमें रवींद्रनाथ की 'बाँसुरी' नाटिका में चित्रित एक खास तरह के कवि चरित्र की पैरोडी की गयी थी।बाद में, इन दोनों के साथ बुद्धदेव बसु भी शामिल हुए और तीनों की सम्मिलित औपन्यासिक रचना थी—वनश्री रवींद्रनाथ की मृत्यु और काजी नजरुल इस्लाम की लेखनी के स्तब्ध हो जाने के बाद बांग्ला के

काव्याकाश पर जिन आधुनिक कवियों का उदय हुआ उनमें से प्रेमेंद्र मित्र का नाम सबसे पहले लिया जा रहा था और स्वयं रवींद्रनाथ उनकी रचनाओं के प्रशंसक रहे थे ।

प्रेमेंद्र मित्र और उनकी पीढ़ी के बहुत सारे कवि, जैसे शैलजारंजन, संजय भट्टाचार्य, सजनी कांत दास, शिवराम चक्रवर्ती, जीवनानंद दाश, अमिय चक्रवर्ती, प्रमथनाथ बिशी, अरुण मित्र और निशिकांत अपने-अपने ढंग से कविता लिख रहे थे और जी रहे थे। देश की आजादी व देश के टुकड़े से जुड़ी प्रसन्नता और अवसाद के साथ-साथ अपनी-अपनी राजनैतिक प्रतिबद्धता, रूझान और समझ के प्रति पूरी निष्ठा रखते हुए। प्रेमेंद्र मित्र की रचनाओं में राजनैतिक पूर्वग्रह तो थे लेकिन वे हथियार के तौर पर उनका इस्तेमाल नहीं करना चाहते थे—उन्होंने हथियार चलानेवाले हाथों को मजबूत किया, ताकि तर्क, विमर्श और वितर्क को नयी धार दी जा सके। यह विनियोग या अंतर्योग रचना की समग्रता के साथ-साथ, साहित्य को किसी वर्गार्थ नहीं बल्कि जातीय संचेतना से जोड़कर देखता था। ऐसा पाठक वर्ग उनके निकटतर आता गया और प्रेमेंद्र ने भी उन्हें कभी निराश नहीं किया। साहित्य सृजन और पाठकीय भागेदारी का जो अटूट सिलसिला इस शताब्दी के तीसरे दशक में आरंभ हुआ था—वह नवें दशक के अंत तक लगभग साठ साल तक निरंतर कायम रहा ।

वर्ष १९५७ में, प्रेमेंद्र मित्र को कविता के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से और फिर १९५८ में रवींद्र पुरस्कार से सम्मानित किया गया। दो महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित काव्य कृति थी, 'सागर थेके फेरा' (सागर से वापसी)। उनकी अन्यान्य महत्त्वपूर्ण काव्य कृतियों में कुछ हैं—'सम्राट' 'हरिण चिता चिल', 'कखनो मेघ', 'अथवा किन्नर', 'नदीर निकटे' और 'श्रेष्ठ कविता' आदि।

प्रेमेंद्र मित्र के कथा जगत का जितना अधिक विस्तार था, उतनी ही अधिक उसमें गहराई भी थी। अपनी कल्पना को भी वे वास्तविकता के रंग में कुछ इस तरह रंग देते थे कि वह जीवन का हिस्सा बन जाता था। न केवल संख्या में बल्कि अपनी विषय-वस्तु उत्कृष्टता के लिए उन्हें बार-बार पढ़ा गया । गद्य एवं पद्य के क्षेत्र में यथार्थ, कल्पना और संभावना को अनिश्चय बोधक-विन्यास से जोड़नेवाले तथा अर्थ और आशय की रहस्यमयता और पारदर्शिता को आधुनिक मन से सँजोने वाले इस लेखक ने कभी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं जोड़ी। जीवन के अंतिम वर्षों में रवींद्रनाथ के अनन्य भक्त हो जाने वाले बुद्धदेव बसु ने अपने युवोचित उत्साह में अपनी पत्रिका 'प्रगति' (१९२७-२९, ढाका से प्रकाशित) यह कहा भी था कि 'प्रेमेंद्र का पुन्नाम' रवींद्रनाथ के कृत्रिम एवं सायासलिखित 'योगायोग' से बेहतर है। जो बात रवींद्रनाथ चार पृष्ठों में कहते हैं वह प्रेमेंद्र एक ही परिच्छेद में कह देते हैं। कहना न होगा, प्रेमेंद्र इस तरह की टिप्पणियों से खुश नहीं होते थे। क्योंकि वे किसी साहित्यिक प्रतिमान से प्रतिस्पर्धा करते हुए किसी राजनीति के तहत नहीं लिख रहे थे। बाद में काल्पनिक छल-छन्द्म के मुकाबले सामाजिक यथार्थ को महत्त्व देते हुए उन्होंने तीस से भी अधिक कथाकृतियों का प्रणयन किया। प्रेमेंद्र ने राजनीति का कोई गंडा या चोला धारण नहीं किया। उल्टे हुआ यह कि कई वामपंथी लेखक उनके सहयोगी और प्रगतिशील रचनाकार उनके भक्त हो गये। अपने रचना-विन्यास में प्रेमेंद्र मित्र की रचनात्मकता को उनकी वैज्ञानिक दृष्टि ने एक सीमा तक प्रामाणिकता और विषय-वस्तु के निर्माण और निर्वाह में कल्पना और अतिरंजना के उस प्रभाव को न्यून किया—जिसमें, बाद में तत्कालीन साहित्य की एक दिशा भावातिरेक वश डूब रही थी। वे अपनी पात्रता (लेखकीय और प्रथम पुरुषोवाच के अंतर्गत) को व्यवस्था देते हुए तथ्यों के समुचित आकलन और अनुशीलन पर बहुत जोर देते थे। इस दृष्टि से उनके उपन्यास 'मनुद्वादश', 'सूर्य काँदाले सोना' और 'आगामी काल' विशिष्ट कहे जा सकते हैं। 'आगामी काल' में स्थितियाँ अपनी कथा स्वयं कहती चलती है। उसमें कोई नायक नहीं। इन सबमें

सावधानी इस बात की भी रखी गयी कि इस तरह के तथ्यों से विषय-वस्तु बोझिल या कृत्रिम न हो जाय। यह शिल्प और न्यास-बंध ही उनके पाठकों में अतिरिक्त विश्वसनीयता पैदा कर सका। उन्होंने 'कृत्तिवास भद्र' के उपनाम से भी कई कृतियों का प्रणयन किया।

सामाजिक संबंधों की अनिवार्यता और उनके बीच पनपने वाली एक तरह की निर्भयता का हवाला उनकी कई कहानियों में लक्ष्य की जा सकती है। बांग्ला की सर्वश्रेष्ठ और यशस्वी पत्रिका 'देश' (साप्ताहिक) के प्रथम अंक में प्रकाशित उनकी कहानी 'महानगर' से लेकर 'हयतो', 'कापुरुषेर काहिनी' और 'तेलेनोपोता आविष्कार'—(जिस पर बाद में मृणाल सेन की प्रसिद्ध फिल्म 'खंड़हर' बनी) तक में व्यक्ति-संबंधों की अनबूझ पहेली का सिलसिला चलता रहा।

साहित्य और विज्ञान तथा आनंद और विस्मय के परस्पर तालमेल और समुचित समायोजन से बांग्ला साहित्य को एक नयी दिशा देने में सक्षम प्रेमेंद्र मित्र ने स्वयं को 'घनादा' नामक चरित्र में रूपांतरित कर दिया था। और प्रेमेंद्र क्रमशः प्रमेंद्र दा और फिर अपने युवा पाठकों के बीच घनश्याम दा उर्फ 'घना दा' के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे। यह पात्र अपनी अद्वितीयता और नित्य-नूतनता के नाते पिछले पचास वर्षों से पाठकों के बीच लोकप्रियता के शिखर पर था। इस शृंखला की पहली कहानी 'मशा' (मच्छर) १९३६ में छपी थी, जिसमें 'घना दा' का आविर्भाव हुआ था और जिसके प्रकाशित होते ही 'घना दा' के अवतरण की धूम मच गयी। इस तरह की वैज्ञानिक और काल्पनिक फैंटेसी (कल्प-विज्ञान-कक्षा) ने न केवल किशोरों को बल्कि सभी आयु वर्ग के पाठकों के मन में जबरदस्त दिलचस्पी पैदा की।

कहना न होगा, तब वैज्ञानिक आविष्कारों और तेजी मे बढ़ते जा रहे औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप एक ऐसा पाठक वर्ग उभर रहा था जो नये-नये वैज्ञानिक अनुसंधानों, अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों के संबंध में प्राप्त हो रही जानकारियों से, ग्रह-नक्षत्र, उपग्रह-स्पुतनिक और उड़न तश्तरी के काल्पनिक, संभावित और असंभाव्य चमत्कारों से परिचित होना चाहता था। ऐसा बहुत-सा साहित्य जो अब फिल्मों, कैसेटों, हास्य-पट्टियों (कॉमिक्स) या दूसरे माध्यमों से उपलब्ध है, उन दिनों केवल साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों से प्राप्त था। 'घना दा' ने भारतीय संदर्भों, मिथकों और परंपरागत लोक-कथा शैलियों को वैज्ञानिक दृष्टि से और भी रोचक बनाकर प्रस्तुत किया। किशोर पाठकों के मन में अपनी जमीन और आसमान से जुड़ने का रुझान पैदा हुआ। परी-जगत, भूतिया कहानियाँ, राजा-रानी या गोपाल भाँड़ के नाम पर चलने वाले भोंड़े किस्से के बदले मंगल-शुक्र और दूसरे ग्रहों के रोचक और अद्‌भुत कारनामों के साथ-साथ घना दा ने जहाँ एक समानांतर संसार रच डाला वहाँ आयातित विदेशी किशोर-साहित्य पर से बांग्ला के किशोर पाठक की निर्भरता दूर हुई। ऐसी लगभग चालीस पुस्तकें उन्होंने लिखीं, जिसमें 'घनादार चिंड़िवृत्तांत', 'शुक्रे जाँरा गियेछिल' बहुत प्रसिद्ध हुई।

'घनादा' कहीं भी पहुँच जाने में सक्षम हैं — गुप्त खजाने की तलाश में धरती के किसी भी कोने में—अपनी छतरी, अपनी मामूली-सी खुर्दबीन और रस्सी साथ लिए। इन्हीं से उनकी त्रिलोक-यात्रा शुरू हो जाती है, कभी उपग्रहों के टाइटानों पर तो कभी अफ्रीका में एलिफेंटा ग्रास से ढकी घाटियों में। 'घनादा' जैसा ही एक पात्र है पराशर वर्मा जो इस कवि हृदय का गुप्तचर और जासूस है। हालाँकि यह कथा-शृंखला उतनी लोकप्रिय नहीं हुई। लेकिन प्रेमेंद्र मित्र की व्यक्तिगत रुचि, स्वभाव और विनोद प्रियता से पराशर वर्मा का चरित्र अधिक मेल खाता है। इन दोनों पात्रों के इर्द-गिर्द अनगिनत पात्र इतिहास, भूगोल, नृतत्व, जीव-विज्ञान ग्रह-नक्षत्र-जगत और मानव के उत्कर्ष तथा उसके संघर्ष का परिचय मिलता है। पाठक कथा के उपक्रम से एक रोचक और हैरतअंगेज विश्वकोश के पन्ने उलटता

चला जाता है। उसकी कल्पना में ऐसे पात्र सदैव नये पराक्रम और पुरुषार्थ के साथ उड़ान भरते रहते हैं। प्रेमेंद्र मित्र अपने अनुभव, स्वाध्याय और कल्पना का रंग बड़े उमंग से अंकित करते चलते हैं—चाहे 'घनादा' अजनबी राहगीर हों या सहृदय अंतरिक्ष यात्री, गुरु हो या गुप्तचर, वैज्ञानिक हो या किसी मठ का संन्यासी। वह नये-से-नये आविष्कारों और संधानों में डूबा ही नहीं रहता, पाठकों को साथ लेकर नित नये प्रयोग करता है। इन कथा-श्रृंखलाओं ने न केवल उनके समकालीनों को बल्कि परवर्ती पीढ़ी के लेखकों, यथा सत्यजित राय, समरेश बसु, शीर्षेंदु मुखोपाध्याय, सुनील गंगोपाध्याय, बुद्धदेव गुह, अतीन बंद्योपाध्याय और रूपक चट्टराज आदि को प्रेरित-प्रभावित किया। ऐसे बहुत-से पात्र जैसे कि प्रोफेसर शंकु, फेलूदा, टेनिदा, गोगोल, ऋजुदा और रानु भी वैज्ञानिक और कल्प लोक विज्ञान के रहस्य और रोमांच को नित्य नये कथा-संदर्भों के साथ रूपान्वित करते रहे हैं।

प्रेमेंद्र मित्र का चलचित्र जगत के साथ अटूट संबंध बना रहा। इस क्षेत्र में भी वे विशिष्ट बने रहे। जीवन को उसकी संपूर्णता और समग्रता में पाने और जीने की ललक उन्हें इस पारदर्शी जगत में ले आयी थी। युवावस्था में ही उनका परिचय प्रथमेश बरूआ से हुआ था और उनके अनुरोध पर उन्होंने 'रिक्ता' फिल्म की पटकथा तैयार की। फिल्म की सफलता से उत्साहित होकर उन्होंने फिल्मों के लगभग सत्तर कहानियाँ और उनकी चित्रपट-कथा लिखी। इन कहानियों का संकलन अलग से प्रकाशित भी हुआ, जिसमें साठ कहानियाँ संकलित थे।

लेकिन इतने से उन्हें संतोष नहीं था। १९४३ के आसपास उन्होंने अपनी पहली फिल्म बनायी। नाम था 'समाधान'। इसके बाद 'विदेशिनी', 'नूतन खबर' और 'मयला कागज' जैसी लगभग १४ फिल्में बनायीं। फिल्मों की पटकथा लिखने के लिए वे कुछ समय के लिए बंबई भी गये थे, तीन वर्षों के अनुबंध पर हस्ताक्षर करके। उस समय उनकी मासिक आमदनी पंद्रह सौ रुपये प्रतिमाह थी। इसके पहले बंगाल के दो अन्य साहित्यकार बंबई में अपना भाग्य आजमाने पहुँच चुके थे—शरदिंदु बंद्योपाध्याय और नवेंदु घोष। लेकिन वहाँ उनका जी नहीं लगा और लेखक की स्थिति कमोबेश बंधुवा मुंशी जैसी ही थी। अपने जिद्दी और सनकी स्वभाव के कारण वे अनुबंध फाड़कर कलकत्ता वापस आ गये। और फिर 'नूतन खबर', 'कालो छाया', 'हाना बाड़ि' और 'डाकिनीर चर' जैसी यादगार फिल्मों का निर्देशन किया। इनमें से 'मयला कागज' उन्हें बहुत ही प्रिय थी। और अपनी ही जिस फिल्म से उन्हें सबसे ज्यादा चिढ़ थी, वह थी, 'चुपि चुपि आसे'। उनके संवाद बाङ्ला फिल्मों में बड़े ही प्रभावी और मार्मिक होते थे और इससे उनके स्तर में बड़ा सुधार आया।

अपनी कहानी के सफल रूपांतर से उन्हें बड़ी खुशी होती थी और अगर उन्हें यह लगता कि फिल्मकार से कोई चूक हो गयी है तो वे अपनी अप्रसन्नता और विरोध बताने-जताने से तनिक भी नहीं चूकते थे। भले ही, वह कितना ही बड़ा फिल्मकार क्यों न हो। अपनी कहानी '**स्वप्ननिये**' पर बनी फिल्म देखकर वे आहत हुए थे और इसके निर्माता-निर्देशक पुर्णेन्दु पत्री से उन्होंने कहा भी था कि तुमने यह क्या किया? कम-से-कम मुझे तो पटकथा तो दिखा ली होती। इसमें उनका कोई दंभ प्रकट नहीं होता था बल्कि अनुभव भरा आत्मविश्वास ही होता था। कहना न होगा, अच्छी कहानी के बावजूद यह फिल्म फ्लॉप हो गयी थी। यही कारण था कि 'तेलेनापोता आविष्कार' और 'हयतो' जैसी प्रसिद्ध और फिल्मांकन की दृष्टि से प्रसिद्ध कहानियाँ पूर्णेन्दु पत्री को नहीं दी। वे केवल प्रयोग के नहीं उसके सफल विनियोग के हामी थे। अपनी कहानियों की कीमत और देश-विदेशी की समकालीन फिल्मों के स्वर और तेवर से पूरी तरह परिचित थे। इस तरह की पत्र-पत्रिकाएँ भी वे नियमित रूप से मँगाया करते थे और भारतीय सिने जगत् की तमाम जानकारी रखते थे। देवकी बसु के कार्यों की वे बड़ी सराहना करते थे। सत्यजित रॉय के प्रशंसक बने रहने के बावजूद जब उनकी कहानियों पर 'कापुरुष ओ महापुरुष'

(१९६५) फिल्म बनी तो उन्हें लगा कि कथा का मर्म संभवत: पूरी तरह व्यंजित नहीं हो पाया है। लेकिन तरुण मजूमदार द्वारा निर्मित 'संसार सीमांते' फिल्म से वे अभिभूत हुए थे, जिसकी कहानी उन्होंने लिखी थी। मृणाल सेन ने जब 'खँड़हर' फिल्म बना ली तो वे प्रेमेंद्र दा को बड़े सम्मान से, इसका आरंभिक प्रदर्शन दिखाने ले गये। इस फिल्म को अपनी आधी अंधी आँखों देखते-देखते, जब उनसे नहीं रहा गया तो वे बोले, 'जल्दी से खत्म करो इस फिल्म को... मैं अंधा हो जाऊँगा।' फिल्म खत्म हुई तो प्रेमेंद्र बाबू बड़े खुश नजर आये। उन्हें लगा कि वे जो चाहते थे, वह कार्य संपन्न हुआ है। अपनी मृत्यु के दो वर्ष पूर्व उन्होंने बांग्ला की प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती लीला मजूमदार के सहयोग से किशोर-साहित्य (कहानियाँ), दो खंडों में संपादित किया था। रवींद्रनाथ के बाद छोटी कहानियों और कविता के क्षेत्र में वे विशिष्ट स्थान के अधिकारी थे।

प्रेमेंद्र बाबू कई-कई साहित्यिक सम्मानों से सुशोभित थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें 'साहित्य सम्मान' (१९५४), बाल-साहित्य को अभिनव योगदान के लिए 'भुवनेश्वरी पदक' (१९७१) और 'जगत्तारिणी स्वर्ण पदक' (१९८१) से सुशोभित किया था। इसके अलावा 'शरच्चंद्र स्मृति पदक पुरस्कार', 'सोवियत लैंड-नेहरू पुरस्कार' (१९७४) 'आनंद पुरस्कार' (१९७३) और 'पद्मश्री' वे पहले ही प्राप्त कर चुके थे।

अपनी मृत्यु से कुछ ही दिन पहले, अपनी अस्वस्थता के बावजूद वे विश्वभारती की 'देशिकोत्तम' उपाधि के लिए १६ जनवरी, १९८८ को शांतिनिकेतन पहुँचे थे। तब उन्हें अपने प्राणघातक रोग, पेट के कैंसर के बारे में पता न था। मार्च में इस रोग का पता घर वालों को चला तो वे अस्पताल में भर्ती किये गये। अपने स्वभाव के कारण वे फिर घर आने की जिद करते रहे। दरअसल वार्धक्य और मृत्यु-भय, ये दोनो उन पर जैसे लागू ही नहीं होते थे। जब से आँखों की दृष्टि चली गयी थी तब से वे बड़े विचलित हो गये थे। एक लेखक मानसिक तौर पर सक्रिय रहे पर कुछ पढ़ न पाये, लिख न पाये, यह कैसी अभिशप्त स्थिति है। उन्हें अपनी असहायता पर बड़ा क्षोभ होता और वे स्वभाव से चिड़चिड़े भी हो गये थे। मित्रों का आना-जाना, तब भी लगा रहता था। वे अक्सर यह कहकर दोस्तों से मजाक करतो रहते थे कि आजकल आत्महत्या करने की सोच रहे हैं। अगर यह कार्य पाप नहीं होता तो वे कब के मर चुके होते। फिर भी जहाँ तक संभव होता, वे दूसरों को लिखकर और दूसरों से सुनकर आश्वस्त हो लेते थे।

अपनी जिंदगी के तमाम विष और अमृत दोनों को ही उन्होंने पिया और अंतिम घड़ी तक हार नहीं मानी। वह जीवन वाल्ट हिव्टमैन की तरह जिसका आरंभ हुआ था और जान मिल्टन की तरह जिसका समापन हुआ। कल्लोल युग के इस अंतिम और अनन्य प्रतिनिधि प्रेमेंद्र मित्र का एक संदेहवादी की तरह ईश्वर की सत्ता में संदेह था लेकिन वे नियति-चक्र को मानते थे। इसी तरह रामकृष्ण परमहंस में उनकी बड़ी श्रद्धा थी और जीवन तथा साहित्य के आदर्श थे ईश्वरचंद्र विद्यासागर। दिवंगत होने के बाद इस कृती साहित्यिक के सिरहाने कोई धर्मग्रंथ नहीं रखा था—उनके सीने पर रखी थी उनकी महत्त्वपूर्ण और चर्चित कृति 'घनादार चिंड़ि वृत्तांत'।

□

दो बांग्ला कविताएँ

प्रेमेंद्र मित्र

अनुवाद : राजनंदन मिश्र

(एक)

मैं कवि

मैं कवि लोहारों का और ठठेरों का और बढ़इयों का
मुटिया मजूरों का
—मैं कवि तमाम कमकरों का

भाई, मैं कवि कर्म का और पसीने का
विलास विवश मर्मों के सपने के लिये तो भाई,
समय तो नहीं हाय!

माटी माँगती है हलों के आघात
समुद्र माँगता है हाल
पातालपुरी की बंदिनी धातु
इंसान के पास रो कर काटती है समय
वेगवती नदी सेतु बंधन में बंधना जो चाहती है
अलसाया निहारूँ निखिल माधुरी
समय तो नहीं हाय!

माटी की चाहत पूरी करने को घुमाता हूँ
कुम्हार का चाक
आकाश की पुकार पर खोलता और मिलाता हूँ
दु:साहस की पांखें,
गगनचुंबी मीनार सा दंभ भरता हूँ
धरनी की गूढ़ आकाश में उठाता हूँ उद्धत अंगुली।

सकरपारे कटे जंगलों में शायद
पड़ती है ज्योत्सना की छाया
प्रिया की गोद में रोती है सारंगी की आवाज
घनीभूत होती है निशीथ माया।

दीपहीन घर में अर्धनिमीलित
उन दो आँखों में
जानता हूँ दो बूँद अश्रुजल में
मधुर मिन्नत झूलती है
वह मिन्नत जो रखूँ समय तो नहीं हाय
विश्वकर्मा लीन है जहाँ हजारों सृष्टि में
चरण जो चाहिये वहाँ
भाई मैं कवि लोहारों का ठठेरों का और मुटिया मजूरों का
मैं कवि तमाम कमकरों का।

लोहारों के साथ हथौड़े पीटूँ
बढ़ई का पकड़ूँ तुरपुन
किसी अजाने पथ में भाई
ज्वार में फँसा नाव पाल की रस्सी
पाल उठाये किसी सागर में
हाल फेंकूं किसी दरिया में
किसी पहाड़ में काटूँ सुरंग
कहीं अरण्य साफ करूँ भाई कुठाराघात से
सारी दुनिया का बोझा ढोऊँ और खोआ तोड़ूँ
और खाल काटूँ भाई पथ बनाऊँ
ख्वाबगाह की विरहिनी बाती
बिलावजह ही सारी रात बाट जोहती है
समय नहीं हाय!

(दो)

काग शब्द

चिलचिलाती धूप, निस्तब्ध दोपहर,
आकाश को उलटाकर ढाली
असीम शून्यता।

धरती की जमीन और मन में
इसी बीच सुनता हूँ करते हैं शब्द
शुष्क कंठ से कौये

गीत नहीं, सुर नहीं
प्रेम, नफरत, भूख—कुछ भी नहीं
—सीमाहीन शून्यता की शब्दमूर्ति सिर्फ

मनुष्य के बारे में सुना है तमाम;
मन के अरण्य में जितनी हवायें उठती हैं
शब्दों का मरमर
वेदना और प्यार,
उद्दीपन, आशा व आक्रोश,
जाना है सभी हिंडोलों को।
सब अंधड़ों के पास है एक
शब्दों की नीलिमा
अंतहीन, निष्कंप, निर्मल।

वहाँ किनकी छतों पर सारी दुपहर
कौआ करता है शब्द, सुने।
समझने और समझाने के
प्राणांत क्लांति के शेष में
अकस्मात खुल जाता है आश्चर्य दरवाजा।

कौआ शब्द करता है, और
उस शब्द का धू-धू करता अपार विस्तार
जेहन में छा जाता है तमाम शब्दों का अतीत
गहरे ध्यान की प्रशांति की तरह।

फिर शाम होगी
धूप कम होगी
मनुष्य मुखर होगा
मैदानों और घरों में
समझना पढ़ना लेना-देना
रोज के प्रसंग प्रचूर
मन जुड़ाया रहेगा।

किसी क्षण फिर भी सब सुर
काट दे सकता है गहन दुपहरी में
एक कौआ शब्द।

समस्त अर्थों की ग्रंथियाँ धीरे-धीरे खोल,
रोज की भाषा अपने सब वजनों को भूल,
फैला सकती है एक निष्कंप निथर,
नभनील अपार विस्मय में। □

कहानी

चिनार अपने-अपने

मंजुल भगत

वह एक चहकता-बहकता समूह था, साहित्यकारों का। किसी सेमिनार में आये थे। मन में उमंग, शरीर में तरंग थी। मैदानी नगर से ऊबे-भागे लोग। 'रोजमर्रा' की रस्सी तुड़ाकर, खूंटा उखाड़कर छूटे लोग। उत्साह था, पहाड़ी पवन के छोर को छू लेने का, झरनों को अंजुरी में भर रुखी सांसों को भिगो लेने का। मन मगन था, चिनारों में, पहाड़ों में, बादलों में। बड़ा अंतर था घुले-भीगे कपड़ों पर, छतों के ऊपर मँडराते बादलों की गड़गड़ाहट और हिम-शिखरों के पीछे जल-थल होते मेघों में। बाग था पुराने चिनारों का, इस कदर सघन कि पत्तों के बीच से झाँकता आकाश धब्बा-धब्बा सा दिखलाई पडता।

धरती पर चिनार के सूखे-झरे पत्तों का लाल अंबार था। पेड़ फिर भी छतनार थे। वे लोग नाजुक पत्तों को रौंदते चल रहे थे जैसे कुछ करारा सा नमकीन कुरकुरा रहे हों। फिर सब खिलखिलाते हुए पत्तों पर पसर गये और उन्हें मुट्ठियों में भींचकर मुरमुराने लगे जैसे वे कड़कड़ाते हुए नये नकोर नोट हों। रेशम एक हथेली का सिरहाना बनाकर पीठ के बल लेट गयी। बोली,

''रमणीक तुम्हारे झोले में क्या है, यह मोटा सा?''

''बेगम का तकिया।'' उसने बैठते हुए चुटकी ली।

''क्या? देना तो जरा।'' रेशम ने झोला खींचते हुए कहा।

''अरे, वह नहीं। पं. आनंदकुमार का लिखा हुआ उपन्यास है। इस कदर दिलचस्प कि....।''

''जो भी है, माकूल है।'' रेशम ने झोला अपने सिर के नीचे जमा लिया और हँसने लगी।

''वैसे भी इस तकिये के मायने है — 'ठिकाना'। वह भी किसी संत-ओलिया का, बेगम का नहीं, वह तो बस नाम पड़ गया।''

''अरे, पढ़ा है मैंने और देखा भी है स्टेज पर। तुम क्या, नसीब और संजोग में विश्वास करते हो और पारलौकिक न्याय में भी?'' उसने संजीदा होकर पूछा। ''यह एक खूबसूरत संजोग ही तो है कि हम सब यहाँ चिनारों के नीचे एक साथ बैठे है।''

''मैंने चिनार से घना, छायादार और ऊँचा पेड़ कभी नहीं देखा।'' उसने जोड़ा।

"सच। चिनार के पत्तों की हवा चीड़-वन से अधिक स्वास्थ्यवर्धक बतलायी गई है। लगता है इन्हीं पलों में एक सिलिंडर विशुद्ध ऑक्सीजन पी गये हों।" चांद ने ठुड्डी उठाकर नाक की नली को हवा में गाड़ते हुए कहा। सब बेवजह हँसने लगे। जीना कितना भला है। चाँद के मन में यों ही ख्याल आया कि यह रेशम बड़ा मुँह खोलकर बेइख्त्यार क्यों हँसा करती है? हरदम इतनी भारी भरकम पटोला साड़ियाँ क्यों पहना करती है? प्रकृति की छटा से अनछुई रहने का नाटक क्यों किया करती है? लेकिन, प्रत्यक्ष उसने कहा,

"कितना मोटा तना होता है चिनार का।"

"हाँ, पर कतई खोखला, कोठरीनुमा। और एक तरफ से छाल पूरी गायब।" रेशम ने कहा।

"वह देखो उसकी खोह में उल्लू।" मखमूर बोल पड़े।

"उल्लू? यहाँ चिनार में उल्लू?" चाँद निराश सी बोली।

"हैं न चाँद पर दाग सी बात।" रेशम ने इत्मीनान से कहा।

रमणीक अधलेटा सा, कोहनियों पर उठंग होकर चिनार का सायबान देखने लगा।

"कहीं नहीं। रात में जरा बिस्तर से उठकर देखा होता, चाँदनी में पंकत पेड़ों के तने ही तने दिखलायी दे रहे थे। परी-लोक सा हो गया था सब कुछ।" चाँद ने रूठते हुए कहा।

"जैसे चार सौ बरस बूढ़े पेड़ों के कोटरों में उल्लू बस ही न सकते हों।" रेशम चिढ़कर बोली। उसे लगा चाँद एक धोखा है, उसकी कवितायें एक फरेब हैं। वह क्यों हरदम शब्दों को उलट फेर के बिंबों के मायाजाल में फँसा देती है? जैसे, जीवन बस चाँदनी में पेड़ों के मोटे तने ही हैं जहाँ केवल बुलबुलों को ही चहचहाना चाहिये। उसका जी किया कि, चाँद का मायावी लोक एकदम से तहस-नहस कर दे। ढेले बरसा दे उसके परी लोक में।

इतने में चाँद ही रेशम पर हमला कर बैठी जैसे उसके अंतस में उठती विपरीत तरंग की तार उससे जुड़ गयी हो।

"यह तुम अपने बदन पर हरदम पटोला सिल्क क्यों लपेटे रहती हो?"

रेशम एकबारगी चौंक गयी फिर तटस्थ हो बोली, "मैं अपने बदन पर सिवाय रेशम के दूसरा कुछ महसूस ही नहीं करना चाहती।" उसने लेटे-लेटे ही कहा।" बहुत दुलारा होगा तुम्हारा बदन।" चाँद की आवाज आक्रामक नहीं थी। उसमें चाहना थी।

"अरे भाई नाम ही रेशम है इनका तो।" शाद ने बात को हल्का करनो की गरज से कहा।

"मगर कहानियाँ मैं कतई रेशमी नहीं लिखती। और उन्हें तराशने के लिये मुझे कश्मीर नहीं आना पड़ता।"

रेशम ने तल्खी से कहा। "अब उठें क्या? शाम घिर आयी है।" उसने जोड़ा।

"अरे, अभी तो उजाला बाकी है।" मखमूर बोल पड़े। तभी कंकरीली सड़क पर एक जीप रोडी उछलती आकर रुक गयी। शाद साहब थे। कंबल में लिपटे हुए हाथ में भाप उड़ाता समावार थामे थे।

"क्या है? क्या है? सब चहक पड़े।

"नून-चाय है। देखते नहीं बारिश आने को है, बादल बन रहे हैं।"

"कहाँ?" चाँद ने पूछा।

"अब कहाँ क्या? ऊपर तो चिनारों का छाता तना है।"

"पर ये आप कंबल में लिपटे-लिपटे क्यों चले आ रहे हैं? ऐसी ठंड तो है नहीं।" रमणीक ने पूछा।

"यार भाई, हम कश्मीरियों को पाँच चीजें बेहद अज़ीज़ हैं, पूछो क्या?"

"क्या?" सब ने मेजबान को बहलाया।

शाद साहब ने समाचार चिनार के गलीचे पर टेक दिया।

ड्राइवर पाँच छः प्याले लिये चला आ रहा था।

दोनों समावार को हथेलियों से ढांप-थपक कर सेकने लगे। औरों के लिए भी इस वक्त उससे खुशगवार चीज दूसरी कोई न थी।

"हाँ, शाद साहब, तो?" रमणीक ने फिर पूछा।

"तो... एक जोड़ा तो कंबल कांगड़ी का, दूसरा...

कुलचा-कड़म का, बाकी बचा...।"

"का हवा।" सब कोरस में गूँज उठे।

"दुरुस्त। पर इस वक्त तो बाबे चाय हो जाये।"

नून चाय प्यालों में डाली जाने लगी। शाद साहब ने कोट की जेब से सत्तू की पुड़िया निकाली और चुटली-चुटकी प्यालों में डालकर मिलाने लगे।

वाह, साहब वाह। सबने दाद दी। "मगर यह है क्या?"

"भुने हुए चावलों का सत्तू। और समावार में पहले से कसा हुआ नारियल, बादाम, नमक और सोडा पड़ा है।" शाद साहब ने बेहद सलीके से राज खोला तो सब फिर से,

"क्या बात है।" कह उठे। घूँट-घूँट पर दाद दी जाने लगी। समावार क्या था, मानो पूरी गजल सामने धरी हो। शाद साहब कश्मीरी में कोई मुहब्बत का तराना गा उठे। चाय में छन कर आवाज और भी सुरीली हो आयी थी। तराने की लय और भाप की उठती अंगड़ाइयों में होड़ होने लगी। बादल बिन बरसे रह गये। पर, रेशम की पलकें नम हो आयीं।

"क्या बात है?" चाँद ने छेड़ा।

"उहूँ।" उसने टाला।

"चमन मुंतजिर है दोनों का लेकिन तुम आ जाओ बहार आये न आये।" उधार का शेर है पर शायद कामकर जाये।" चाँद ने फिर छेड़ा।

"ऐसा कुछ नहीं है।" रेशम तुनक गयी। उसने अपना बड़ा सा काला बैग खोला और ऊन-सिलाई निकालकर खटाखटा बुनना शुरू कर दिया।

"ओफ्फोह।" एक कोफ्त भरी आह चाँद के कंठ से निकली।

"यह बैग है कि अजगर का पेट।" शाद बोले।

चाँद बस चुप लगाये बुनती रही, ठकाठक। फटाफट।

"अब कश्मीर की तोहीन तो न करो।" चाँद किलस उठी।

"कश्मीर मेरा घर है, मैं यहाँ बुन सकती हूँ, रो भी सकती हूँ।" रेशम चिड़चिड़े लहजे में बोली।

"भई, रेशम, यहाँ कश्मीर में चिड़चिड़ नहीं करो। आखिर लखनऊ से इतना खर्च करके यहाँ तक पहुँचे हैं। पूरा जन्नत तक का सफर किया है हमने।" मखमूर घबराये से बोले।

"क्या? यह आखिर बुन क्या रही हो?" रमणीक ने पूछा।

"दास्ताने हैं।" रेशम ने सख्ती से कहा।

''मर्दाने?''

''जी।''

''मार दिया जान से। आखिर इन्हें खत्म करने की जल्दी भी क्या है?'' मखमूर चिड़चिड़ाये।

''मखमूर भाई यहाँ कश्मीर में चिड़चिड़ नहीं करो।'' रेशम ने टोका।

''भाई? कुछ तो गुमां रहने दिया होता।'' मखमूर नाटकीय अचरज से बोले। सब मुस्कुरा दिये।''अच्छा, इतना तो बतला दो कि ये दास्ताने तुम्हें यहीं कश्मीर में खत्म करने हैं?'' मखमूर ने फिर छेड़ा। ''जी हाँ।'' पत्थर सा गोल और ठोस जवाब आया।

''कांगड़ी सुलगाये?''

शाद ने जेब से दियासलाई निकाल कर पूछा।

''कोयले कहाँ हैं?'' चाँद ने उत्सुकता से पूछा। चाँद के अतिरिक्त उत्साह ने रेशम पर मानो ठंडा पानी उलीच दिया। उसने पलक उठाकर यों चाँद को निहारा मानो वह निरी बच्ची हो या बन रही हो।

''चलो भाई मखमूर कुछ करारे पत्ते तो बिनवाओ। ड्राईवर साहब जरा कांगड़ी तो निकाल लाओ जीप से।'' शाद बोले। कांगड़ी में चिनार के पत्ते दहकने लगे, तेज-तेज जैसे नाईलोन जल रहा हो, चिपकते-लिपटते से। ऊपर से, दो चार चिनार के लाल पत्ते रेशम की गोद में झर पड़े वह सिहर उठी,

''मुझे चिनार के पत्तों से हस्पताल याद आता है।''

''क्या?'' चाँद ने कहा।

''हाँ। चिनार के दो पत्ते जिनसे हस्पताल में बेबस पड़ी मैं दांत मांजा करती थी, सबसे सस्ती और सुलभ दतौन।''

''रहम करो बेगम।'' मखमूर बोले।

''सस्ती और तुम?'' चाँद की हैरानी सचमुच की थी।

''कोई हाल पूछने भी न आये तो पेस्ट-ब्रुश कौन लाये? हालाँकि, घर में सब थे... पति, सास, ननद। मगर वे सब आपस में रिश्तेदार थे, मेरे नहीं। सब चुप बैठे सुन रहे थे जैसे रेशम का बोलना कोई प्राकृतिक घटना हो, आँधी हो, बाढ़ हो, तूफान हो जिसे घटना ही हो।

''अग्नि को साक्षी मानकर लाया गया मेरा शरीर उनसे संबंधहीन ही रह गया। सास को मुझसे वंशज चाहिए था और पति को मेरे शरीर से भय लगता था। पति के लिए मैं ऐसी छलछलाती, उन्मादी नदी थी जिसका उछाल देखकर ही वह किनारे पर खड़े-खड़े थरथराने लगते, उतरने तैरने की तो बात ही क्या? सास के लिए मैं दरकी-बंजर धरती बन गयी। इस विडंबना के बीच झूलती मैं भूल ही गयी कि मेरा शरीर मेरी अपनी मिल्कियत है, दूसरों की इच्छापूर्ति का माध्यम नहीं। होंठ सूखकर पपड़ा गये पर सास से मैं उनके बेटे की कमी बयान न कर सकी।

शरीर घुल कर अंदर ही अंदर धसकने लगा जैसे रेल की पटरी पर पिचकी पड़ी कोई अठन्नी हो। चमक-दमक, उभार-भराव सब पिसकर सपाट हो गये थे। जब खाना-खिलाना, उठना-बैठना तक बंद हो गया तब उन लोगों ने मुझे ले जाकर हस्पताल में पटक दिया और खोज-खबर लेनी बंद कर दी। और औरत के शरीर का करते भी क्या? मेरी हालत देखकर जूनियर डाक्टर तो मुँह ढांप कर बाहर को भाग लेते और औ-औ करके उल्टी करने लगते।''

सबने चौंककर रेशम के सलौने, लवा-लवा, (नर्म कोमल), चेहरे को देखा। त्वचा जैसे घर का

निकला ताजा टटका मक्खन हो।

''फिर न जाने कैसे मैं ठीक होने लगी। साथ ही मेरे मन में यह फैसला जड़ पकड़ने लगा कि अब मैं लौटकर कभी उस घर में नहीं जाऊँगी। पर फिर कहाँ जाऊँगी। मायका तो कोई बचा नहीं था या वहाँ ऐसा कोई नहीं था जिसके मन में मेरे लिए हूक उठती। मैंने एक अजनबी परिवार का दामन थामा और दिल्ली पहुँच गयी। फिर बहुत कुछ घटा जैसे सलाइयों पर फंदे घटते हैं। कुछ फंदे टूट गये, कुछ उलझे रह गये। सफाई से कहाँ बंद होते हैं 'घर'। इसके बाद रेशम का मुख छोटा सा होकर यों भिंच गया जैसे किसी कच्चे फोड़े का बंद-गुम मुहाना हो।

''तो क्यों बुन रही हो ये दस्ताने?''

चाँद बेकाबू सी चीख पड़ी। रमणीक संभल कर बैठ गया और उसे देखने लगा। चाँद अब टक लगाये चिनार के सुलगते पत्तों को घूर रही थी। रेशम चुप्पी साधे सलाइयाँ चलाती रही। ठक-ठक, के ऊपर एक।

शाद, चाँद को यों टक लगाये जलते पत्तों को देखते देख कुछ घबरा सा गया, बोला,

''क्या देख रही हैं?''

चाँद कुछ नहीं बोली।

'चि.... नार। इसके मायने ही हैं क्या आग। इसके लाल-लाल पत्तों को देख कर यही कहा था एक राहगीर ने।

तभी से इसका यह नाम पड़ गया।'' शाद मुस्कुराने लगा। पर चाँद का चेहरा कसता गया जैसे वह धीरे-धीरे झुलस रहा हो और उसके पास सिवाय दर्द सहने के कुछ न हो। शाद ने मदद के लिए रमणीक की तरफ देखा। कुछ कहने के लिये ही वह बोला,

''इस पेड़ का शुरू का नाम भवानी-वृक्ष है। माँ की गोद सी होती है इसकी शीतल छाँह। तभी तो इसके नीचे बैठकर आदमी सहजता से कुछ भी कह सकता है।''

''नहीं SSS नहीं SSS।'' चाँद अगर चीखी होती तो वह कम भयावह होती पर यह हिचकी बंधी, डरी-डरी सी हकलाहट। यह चाँद को क्या हो गया? कहाँ गायब हो गयी रूमानियत की वह अबाध छलक?

''ये घाव हैं, लाल-लाल, गर्म तपते हुए दाग।''

वह तड़प उठी।

''चाँद।'' अचानक रेशम ने सख्ती से कहा, मानो उसे लगा हो चाँद के भीतर का तमाम पागलपन बाहर आ जाने को है। ''मैं ठीक हूँ, बल्कि मजे में हूँ, नौकरी करती हूँ, लिखती...।

वह सुहाग रात नहीं थी। उस सेज पर किसी ने गुलाब की पत्तियों के बीच शीशे के गिलास का बारीक चूरा मिला दिया था।'' चाँद की आवाज किरच-किरच हो टूट रही थी।

मखमूर एकदम से उछल कर खड़े हो गये जैसे बात को कतई सह न पाए हों।

''मैं... मैं जरा घूम कर आता हूँ।''

किसी ने ध्यान नहीं दिया पर मखमूर वहीं के वहीं बिंधे खड़े थे।

''तमाम पीठ छिलकर घायल हो गयी थी, कुंवारी तड़प से मिलकर वह छिलता-रिसता दर्द उस पुरुष का आनंद था। फिर एक सिलसिला बन गया। बदन पथरा गया था। सितम टूटते रहे। पर जान थी कि बदन से ना जाती थी और उस सब के बीच बच्चा भी हो गया। साबुत-सालिम बच्चा। पति के अंग-संग का कमाल।''

''आपके बेटा है?'' मखमूर बदलती बात का सूत्र पकड़कर बैठ गये। चाँद और भी

कलपकर पलटी,

''अपनी बात कौन कर रहा है? चाहकर भी मैं वह दुख अपने ऊपर नहीं ले सकी। इतना जुल्म मेरी बेटी के जिस्म पर टूटता रहा। वह उसे लेकर कभी किसी शहर भाग जाता कभी किसी। मैं पता लगाती रहती और पागलों की तरह उसका पीछा करती। सांस लेने के लिए यह जरूरी हो जाता कि मैं उसके आसपास कहीं मँडराती रहूँ जैसे मेरा साया उसे बचा लेगा। चश्मे के पानी सी उसकी साफ शफ्फाक देह पोखरे सी गंदला गयी। तीन ही साल में वह बुढ़ा गयी। और उसका बच्चा? अभी तीन शब्द बोलना भी नहीं सीखा था कि किसी सयाने बुजुर्ग की भाँति चुप्पी साधे माँ के माथे को सहलाता रहता। माँ के हाल पर चौंक कर रोने को होता फिर सिसकी घोंट लेता, आप ही।''

सब लोग मुँह खोले चाँद को देख रहे थे।

''मीहका नाम रक्खा था, मैंने अपनी बेटी का। ओस की बूँदों का गुच्छा। क्या मालूम था कि वह गर्म तवे पर बेआवाज, बिलखती बूँद बन जायेगी।''

चाँद चुप हो गयी।

''इतनी बड़ी बच्ची होगी आपके, अंदाजा ही न हुआ।''

शाद ने कहा, मगर चाँद का ख्याल अपने जिस्म से दूर, कलेजे के उस टुकड़े पर जा पड़ा था जो उसके तन की तमाम हरारत सोख चुका था, सारी धड़कने चुरा चुका था।

यकलख्त मखमूर बिल्कुल चोट खाये बच्चे की तरह घुटे-घुटे से रोने लगे।

''कोई दूसरी बात नहीं कर सकता था कोई, यहाँ घर से इतनी दूर बैठकर?''

चाँद ने नजर ऊपर की और आँसुओं की धुंध में से मखमूर के नक्श पहचानने की कोशिश करने लगी।

''बेटी-बेटी लगायी।'' वह कराहे। फोड़े पर से फाहा हट गया हो जैसे।

''नहीं, मेरी बेटी अब मेरे पास है। मैं उसे उस नर्क से निकाल लायी हूँ।'' चाँद ने मरहम लीपा।

''पीछा करता है वह, दूर तक, नरक हो या दोजख।

कहाँ तक भागोगे? वह और पैना और नुकीला होकर कीलता है।'' मखमूर आक्रामक हो उठे।

''यकीन करें, मखमूर, सुहाग की सेज ही तो सब कुछ नहीं होती। मेरी बेटी ठीक है। वह काम करती है, पढ़ती है, अपने बच्चे से खेलती है और खुश रहती है। कांच की वे तमाम किरचें तो मेरे सीने में खुबी पड़ी हैं। मीहका अब सिर्फ मुझे देखकर उदास होती है, जैसे वह ही मेरी माँ हो। बस, हमारे सब संबंध उलट-पुलट गये हैं और शायद उम्रों का हिसाब भी।'' चाँद मखमूर को समझाते-समझाते स्वयं गुम सी होने लगी थी।

''लेकिन वह शख्स क्या करे जिसकी आठ बरस की तरबूज की फाँक सी लाल-गुलाल बेटी, खेलती-हाँफती, दौड़ी आयी हो और बस इतना ही कह पायी हो कि उसे कुछ हो रहा है जिसे वह सह नहीं पा रही है। बात की संजीदगी समझ में आये, डाक्टर को फोन जाये कि वह बाप की गोद में लुढ़ककर पुतलियाँ उलट दें जैसे वह भी कोई मक्कारी भरा खेल हो या बाप कोई खुदा हो जो हर बला से अपनी बच्ची को बचा सकता हो। आज तक मैं न जाने कितने हकीम-डाक्टरों से मशविरा कर चुका हूँ पर वह हादसा उनकी समझ में नहीं आया। पर जब तक जिंदा हूँ, फीस चुका कर नये-नये डाक्टरों से जिरह करता रहूँगा। अगर किसी रोज किसी की समझ में वह मर्ज आ गया तो.... तो...'' तभी उस विदग्ध वातावरण में रमणीक के कंठ से एक आह निकल गयी। अब उसकी ओर देखने लगे। मखमूर अब

बिल्कुल चुप थे। मानो यहाँ इतनी दूर जिस महबूबा के लिए आये हो, वही दगा दे गयी हो। यहाँ कश्मीर में ऐसा नहीं होना चाहिये था पर हुआ था, हो रहा था।

कांगड़ी में चिनार के पत्ते भस्म होते जा रहे थे। रात पड़ गयी थी। मच्छरों ने तंग करना शुरू कर दिया था। बीच-बीच में कोई उल्लू, बौखलाया सा चीत्कार कर उठता। चिनार बाग जंगली हो गया था। पास ही कहीं जोर की खसखसाहट हुई फिर थम गयी। फिर हुई, रुकी और शुरू हो गयी। रमणीक ने घबराकर टार्च निकाल ली और दायें-बायें सब तरफ फेंकने लगा। एक चिनार के नीचे गाय खुरों से पत्ते सरका कर पसर रही थी।

चाँद खिलखिलाकर हँस पड़ी, तनावों से निबटी हुई हँसी।

''यहाँ की गाय इतनी बौनी होती है और कुत्ता इत्ता बड़ा।''

''वाकई, दूध भी तो बहुत पतला होता है यहाँ का। पर कश्मीर को तो परत को खुरच दिया था। ''इसीलिए यहाँ मिठाई की दुकानें इतनी कम दिखलायी पड़ती हैं।'' चाँद ने बातचीत के बदले हुए तेवर को साधा।

''अब उठलें क्या? कहीं कोई सांप-वांप।'' मखमूर उठते हुए बोला।

''नहीं, नहीं। कोई हो भी तो यहाँ का जहरीला नहीं होता।'' शाद ने भरसक अपना मन घर की तन्हाइयों की तरफ से पलट कर कहा। पर उसकी आवाज के अकेलेपन ने सबको डस लिया।

नहीं शाद, तुम नहीं। तुम नहीं दबाये हो कोई घाव इन सुरखाब परों के नीचे। रोक दो आँखों की उस नमीं को। वह सबतो हम कमतरीनों की कमियाँ हैं। कसम है तुम्हें। होंठ क्यों लरज गये तुम्हारे?'' चाँद और रेशम जैसे एक साथ प्रार्थना कर उठी।

''बुत बने ये तीन सौ वर्ष बूढ़े चिनार। कितना कुछ सुन रखा है इन्होंने तभी तो इतने गुमसुम हो गये हैं।'' रेशम ने कहा।

चाँद ढिढाई से टोकने लगी।

''रेशम तुम इन चिनारों को बूढ़ा कहती हो जो हर बरस, मौसम की पुकार पर भरपूर जोबन से लद उठते हैं?''

''नहीं, मैं कुछ नहीं कहती चाँद, ये चिनार बिल्कुल तुम्हारे हैं।''

''देखा। कितनी दिलदार है रेशम। तुम्हें पूरा मुगल बाग ही बख्श दिया है।'' शाद एक बार फिर पुराने अंदाज में मुस्कुराने लगा। चाँद के कंठ से एक बचकानी किलकारी किलक उठी। वह प्रतीक्षा करने लगी कि कब रेशम पूरा मुँह खोलकर हँसेगी और बंद कलियों से उसके होंठ आश्चर्यजनक रूप से गुफा से खुल जायेंगे।

रेशम हँसने लगी। चाँद को लगा जैसे वह दिल्ली की एक बेहद उमस भरी शाम में, ठंडे पानी से भरपूर नहा चुकी हो और एकदम ताजा और हल्की हो गयी हो।

□

हिंदी कहानी के सौ वर्ष

डॉ. गंगाप्रसाद विमल

हिंदी कहानी के सौ वर्ष का अतीत रचना और इतिहास के आलोक में घटनाओं से भरा दीखता है। १९वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में भारत उपमहाद्वीप एक ओर सुधारवादी आंदोलनों से अनुगूंजित था तो दूसरी ओर एक नयी साम्राज्यवादी शक्ति के कारनामों से चमत्कृत। एक ओर आशावादी आदर्श था, पुराने भारत के प्रति अतिरिक्त मोह था तो दूसरा १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की वास्तविक स्थिति से उत्पन्न पराजयबोध, हताशा और आत्मस्वीकार था। इन दो अतिवादों के बीच 'भारतीयता' और प्रताड़ित 'भारतीय स्वाभिमान' को संरक्षित करने का काम उस नयी रचनाशीलता ने किया जो साहित्य के नये व्यक्तित्व को गद्य भाषा में अभिव्यक्त कर रही थी। इन सौ वर्षों में प्रमुखत: यदि किसी विधा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तो वह वास्तव में 'कहानी' है जिसने अपने उद्‌भव के आरंभ में ही लगभग सभी विधाओं को प्रभावित किया है। यही कारण है कि भारतेंदुकाल की भाषा में 'कहानीपन' का जो पुट है उसने एक तरह से स्वाधीनता के महत्तम विचार को संप्रेषित किया। हमारे इस वक्तव्य के (कि भारतेंदुकालीन रचना के भाषागत मूल भाव में स्वाधीनता का आभास प्रेषित होता है) दो मुख्य आधार है—एक तो भारतेंदुकाल की गद्यभाषा में एक खास किस्म का ललित प्रभाव है, जिसके चलते भारतेंदुकालीन निबंधों को ललित निबंधों की संज्ञा दी जाती है, दूसरा आधार है रचना के समग्र व्यक्तित्व से उभरने वाली स्वाधीन चेतना। यह चेतना कभी स्वच्छन्दता में अभिव्यक्ति पाती है तो कभी उदारता में, कभी इतिहास की अनिवार्यता के रूप में अपने प्रमाण छोड़ती है तो कभी-कभी मानवीय आकांक्षाओं में रूपायित होती है। वास्तव में पिछली शताब्दी में 'कथापन' का यह प्रभाव साहित्य की सभी विधाओं पर पड़ा है। यही कारण है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का निबंध साहित्य 'कथा कहने' की पारंपरिक शैली से अतिक्रांत है। इस काल के निबंधों में कथात्मकता के बाहुल्य ने उन निबंधों को निजी, व्यक्तिगत किस्म के ललित निबंधों की श्रेणी में वर्गीकृत करने के प्रमाण जुटाए हैं। अत: निबंधों में कथात्मकता सिद्ध करती है कि कथा के नये शिल्प में कथापन का पैनापन साहित्य के नये रूझान को परिपुष्ट करते हुए सामाजिक आबद्धता की नई प्रवृति है। इस पर हम बीसवीं शताब्दी के कथा उन्मेष के संदर्भ में भी उचित स्थल पर चर्चा करना चाहेंगे। यहाँ केवल साहित्य को दरबारों से जनता तक लाने की जो मुख्य प्रवृति है उसी की परिसीमा में कथा के उन्नयन की परीक्षा करनी होगी। मसलन मध्यकाल की उत्तरवर्ती साहित्यधारा में साहित्य के रसिक राजा, कुलीन लोग एवं

मंदिरों से संबद्ध लोग ही रह गये थे। शेष जन साहित्य की उस मुख्यधारा के रसज्ञ या सहृदय होने से वंचित हो गये थे। फलत: अधिसंख्य जन लोकधारा की ओर उन्मुख हुए। अत: हम पायेंगे कि लोक और कुलीन इन दो धाराओं के बीच साहित्य की सनातन तथा साहित्य की रस-मुग्ध करने वाली दो वृत्तियां प्रवाहित थीं। उन्नीसवीं शताब्दी में गद्य के प्रचलन ने कुलीन और लोक साहित्य में जो रिश्ता कायम किया क्या वही वह मूलाधार या मूल प्रेरणा नहीं जिसने सर्जक को अधिसंख्य जनों की आकांक्षाओं से जुड़ने की ओर अनुप्रेरित किया? वास्तव में यह निर्विवाद है कि कथा की प्रवृति का प्रचलन गद्य में विधाओं के नये आविष्कार से जुड़ा हुआ है।

हिंदी की आरंभिक कहानी को लेकर आलोचकों के बीच एक पुराना विवाद चला आ रहा है। नये अनुसंधानों में बहुत कम लोगों ने इस 'विवाद' के लिए नये ऐतिहासिक प्रमाणों का उत्खनन किया है। अधिकांश अनुसंधान पूर्ववर्ती अनुसंधानों का ही दुहराव है। तथापि नये अनुसंधानों में 'रानी केतकी की कहानी', जो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में रचित किशरीलाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' के बीच की कतिपय कहानियों का उल्लेख हुआ है। इस उल्लेख से प्रथम कहानी के दावेदारों की स्थापना के प्रयास मंद पड़े हैं किंतु मंदमति अनुसंधाताओं ने बार-बार इस व्यर्थ के प्रश्न से सिर टकराया है कि पहली कहानी कौन-सी कही जाये जबकि प्रश्न यह होना चाहिए था कि कहानी का पहला दौर कब आरंभ हुआ होगा और उस काल की कहानियों की मुख्य उपलब्धि क्या है? इस प्रसंग को उठाने का हमारा उद्देश्य मात्र यह है कि 'रानी केतकी की कहानी' से लेकर 'इन्दुमती' तक पूरी शताब्दी विगत और अनागत की संधि के रूप मे नयी विधाओं को साहित्य की मुख्यधारा में स्थान दिलाने के प्रयासों से भरी हुई है। इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि पश्चिम के राजनैतिक आधिपत्य के अतिरिक्त पश्चिम के सभ्यतागत और सांस्कृतिक दबाव भी रचना जगत पर पड़े हैं और इसे संयोग माने या किसी प्रकार की सामयिक स्थिति कि इस दौर में अन्य गद्य विधाओं के साथ कहानी ने पश्चिम से विधाओं की शिल्पगत आधारभूमियां ली हैं तथापि समग्र भारतीय साहित्य के संदर्भ में उनमें हुए भारतीयकरण के रूपांतर भी समसामयिक दबावों के फलस्वरूप हुए हैं। स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी की गद्य विधाएं उतनी सनातन से प्रभावित नहीं है जितनी वे अपनी समसामयिक परिस्थितियों से व समसामयिक जरूरतों से। गरज यह कि हिंदी कहानी एक शताब्दी के भीतर अपने 'स्वरूप' के निर्धारण के लिए संघर्षरत है और वह साहित्यिक स्वरूप प्राप्त करती है किशोरीलाल गोस्वामी तथा उनके समकालीनों की अन्य कथाओं में। कथाओं अर्थात लंबी या छोटी कहानियों तथा उपन्यास और कहानियों में। अत: १९८० के उपरांत लिखी गई कहानियों यथा कथाएं एक साहित्यिक स्वरूप की कहानियां हैं—ये अंग्रेज़ों की जरूरत के कारण उपजी या उनके अनुदेश पर लिखी रचनाएँ नहीं हैं। यही कारण है कि इन कहानियों में एक स्वाधीनचेता, प्राणमय पात्र है, एक धड़कती हुई जातीय विशेषता है और कहना चाहिए कि वह दरबार से जन-क्षेत्र की ओर प्रयाण का एक बिंदु है जिसे राजपथ से जनपथ की यात्रा का आरंभ कह सकते हैं। कह सकते हैं कि यह भारतीय जन की आकांक्षाओं का भी प्रतीक है और आने वाले समय में हम उसकी ठोस आकृतियां कथा के विकसन के साथ देख सकते हैं। रानी केतकी की कहानी, राजा भोज का सपना, एक टोकरी भर मिट्टी, प्लेग की चुड़ैल व कितनी ही अन्य कहानियां हैं जिनमें कहानी के विकसित सोपानों की उपस्थिति देखी जा सकती है। कहना चाहिए कि गद्य के विकास का सर्वोत्तम उदाहरण कथा है तथा कहानी उसका ठोस रूप जिसमें हम युगानुरूप भारतीय मनुष्य की छवि पाते हैं। यह विकास अपने आप में दिलचस्प इसलिए है कि इसका सत्यापन तत्कालीन इतिहास करता है। जाहिर है कहानी और समसामयिक इतिहास, भाव और पादार्थिक स्वरूप

के विकास के समानान्तर है। जो सिद्ध करता है कि रचना अब धीरे-धीरे जीवन के अधिक निकट आने लगी है।

आरंभिक दौर की कहानी में हम प्रचलित काव्य से अनेक प्रकार की भिन्नता पायेंगे। कविता में सनातन के प्रति मोह तो एक अंतर है ही, विधांगत अंतर भी स्वयं स्पष्ट है किंतु मूल अंतर है विचारदृष्टि का। अपने मंद स्वर में ही सही आरंभिक कहानी इसका प्रत्यांकन करती चलती है। आरंभिक कहानियों में भाषा का 'लोक विधायक' रूप ही अधिक प्रयुक्त होता है किंतु उसमें अपनी 'जड़ों' से जुड़ने का भाव है। वह तथाकथित कुलीन अहंकार से ग्रस्त नहीं है। इसके बहुत से कारण हो सकते हैं। मुख्य कारण है एक जनभाषा के रूप में खड़ी बोली का प्रचलन एवं उसमें निहित सार्वजनीनता, धर्म-जाति-रूपगुण वैभव निरपेक्षता। वास्तव में इसी विरासत पर हमारी बीसवीं शताब्दी की कहानी गतिशील होती है जिसके प्रणेता थे मुंशी प्रेमचंद। यद्यपि प्रेमचंद की आरंभिक कहानियों पर 'अतिकल्पनात्मकता' का प्रभाव है तथापि वह 'अतिकल्पनात्मकता' धीरे-धीरे एक वास्तव कल्पनात्मकता में रूपांतरित होती जाती है। अवास्तव से वास्तव की इस यात्रा में हिंदी कहानी अपने लोकप्रिय रूप को प्राप्त करती है। एक ऐसी लोकप्रियता जो कविता के वर्चस्व पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। यह आकस्मिक स्थिति नहीं है। काव्यरसिकों, गुणज्ञों, दरबारों, पत्रिकाओं, विश्वविद्यालयों, शोधकार्यों में तो 'कविता' की सर्वोच्चता का गुणमान होता ही है। तथापि कहानी धीरे-धीरे साहित्य की मुख्यधारा की ओर उन्मुख है। और उनकी जनप्रियता का दबाव ही है जिसके रहते 'कहानी' मनुष्य के सुख यथा दु:ख-दर्द की भी प्रवक्ता बनकर सामने आती है। प्रेमचंद के समकालीन जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन, माधवप्रसाद मिश्र, माधवप्रसाद सप्रे, मास्टर भगवानदास, रामचंद्र पुरु, गिरिजादत्त वाजपेयी, बंग महिला आदि अनेक क़थाकार अतिकल्पना, कल्पना, रूमानियत, स्वप्न के यथार्थ एवं संयोगाधारित प्रभावों के होते हुए भी कहीं न कहीं अपने भारत की ताजा तस्वीर के संकेत छोड़ रहे थे। वे संकेत महत्वपूर्ण थे। उन्हीं के सहारे कथा की आगामी यात्रा विकास के पड़ाव पर पहुंचने वाली थी।

बीसवीं शताब्दी में कहानी की प्रकृति में जो भिन्नता आई वह साहित्य को एक नया रूपाकार देने वाली प्रवृति थी। कथा के लिए भाषा, कथनशैली या परिवृत्त तीनों अनिवार्य तात्विक स्थितियां है। एक सरलीकरण के रूप में कहा जा सकता है कि जब भाषा में परिवर्तन आता है तो विन्यासगत बदलाव स्वत: उपस्थित हो जाता है और जब विन्यासगत या शैलीगत परिवर्तन आता है तो वस्तु का वृत्त बदल जाता है। इस वक्तव्य को एक उदाहरण से समझ सकते हैं—प्रेमचंद की आरंभिक कहानियों में 'रानी सारंधा' जैसी कहानी है जिसमें भाषागत प्रतीति उन्नीसवीं शताब्दी की है—यद्यपि वह कहानी बीसवीं शताब्दी में लिखी गई है। इस कहानी की भाषा में सीधे देशज़ प्रयोग हैं जो भाषा के नव-विकसित रूप से थोड़े पीछे के प्रयोग हैं। हालांकि कभी-कभी कहानी की शिल्पगत जरूरत के लिए व्यतीत की भाषा का प्रयोग करना पड़ता है लेकिन इस संपूर्ण कहानी में वह जरूरत शिल्प की नहीं अपितु वस्तु की है। यदि वस्तु की प्रतीति प्राचीन है तो उसे एक नवोन्वेषित भाषा में कहना, या प्रस्तुत करना कठिन कार्य है।अत: प्रेमचंद की इस कहानी में भाषा की प्राचीनता वस्तु के विश्वासों की प्राचीनता से जुड़ी है। यही कारण है कि वहाँ शिल्पगत विन्यास में केवल एक विवरण का वाचन भर शैली है। परंतु प्रेमचंद के अन्य समकालीनों की कहानियां लें तो अतिभावुकता के सम्मिश्रण से गढ़ी कहानियां भी उस अतिकल्पना या इंद्रियेतर कथा प्रसंगों से बाहर की नहीं है। कहना पड़ेगा कि कहानी के नयेपन की शुरूआत उन कहानियों से होती हैं जिनमें समय के वास्तव को चित्रित करने की क्षमता है। माधवप्रसाद मिश्र या माधवप्रसाद सप्रे की कहानियों को यहां एक अन्यतम आदर्श या मॉडल के रूप में लिया जा सकता है

क्योंकि उनमें गरीबी, दासता, मूल्यबद्ध समाज की जड़ता और आडंबरों के प्रति कौतूहल मिश्रित विश्वास की ऐसी यथार्थ छवियां है कि कथाएँ एक अन्विति में पिरोई जान पड़ती हैं। कहानी को उनके विकास को ऐतिहासिक क्रम में प्रस्तुत करने के जो प्रयास हुए हैं उनमें पृवृत्यात्मक आधार को स्पष्ट करने का प्रयत्न कम किया गया है। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी की आरंभिक कहानियों के विश्लेषण के बिना एक ही प्रवृति में रेखांकित किया गया है। संदेह होना चाहिए कि ऐतिहासिक क्रम को निर्धारित करने के दूसरे प्रयासों में भी कहीं ऐसी कमी रही हो? इससे उत्पन्न भ्रांतियों के कारण कहानियों के विशलेषण व उनके मूल्यांकन में बाधाएं आनी स्वाभाविक हैं। और इन भ्रांतियों के कारण एक सशक्त परंपरा के विकसनशील अध्ययन में भी भ्रम उत्पन्न हो सकते हैं। वास्तव में गल्प या कथा आंशिक रूप से पश्चिमी विधा है। उसकी भारतीय परंपरा कथाकाव्यों में है। अत: परीक्षण या मूल्यांकन के पौर्वात्य और पश्चिमी आधारों को लेना एक दृष्टि से उचित ही ठहरता है तथापि भाषा और वस्तु के दो देशीय आधारों को देखते हुए लगता कि हिंदी कहानी का परीक्षण हिंदी क्षेत्र की जातिगत, समूहगत और अन्य विशेषताओं के आलोक में देखना अधिक संगत है। इस दृष्टि से यह केवल प्रस्ताव मात्र है कि गल्प की सशक्त परंपरा के अतीत को नये ढंग से ऐतिहासिक क्रम में निर्धारित किया जाये। इस प्रस्तावक का यह विनम्र निवेदन है कि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व की गल्प परंपरा को उन कथा काव्यों की परंपरा से जोड़ा जाये जो लोक परंपराओं के रूप में पूर्वकाल में विद्यमान थीं। दरबार या कुलीन वर्ग की परंपराओं को यद्यपि अलग काटकर नहीं देखा जा सकता तथापि उनके वैशिष्ट्य को लोकचेतना के जनवैशिष्ट्य में ही देखा जाना चाहिए। निष्कर्षत: हिंदी कहानी का बीसवीं शताब्दी में संचरण इसी वैशिष्ट्य में विकसित होता है। प्रेमचंद और उनके समकालीन इसके अग्रणी लेखक हैं जो दो भिन्न वैचारिक धाराओं के होते हुए भी समग्रत: एक ही लक्ष्य की ओर इंगित करते हैं।

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में कहानियों की रचना में सक्रियता दिखाई देती है। इसके बहुत से कारणों में मुख्य अनुप्रेरणा नयी नयी पत्रिकाओं का प्रकाशन भी है। प्रेमचंद्र,सुदर्शन आदि की कहानियों में यदि तत्कालीन समाज के रेखांक अधिक हैं तो जयशंकर प्रसाद या विनोदशंकर व्यास की कहानियों में तत्कालीन घटनात्मकता की अपेक्षा भावप्रधान संवेदना का आधिक्य है किंतु दोनों के कथातत्व में युग की सबसे प्रमुख घटना या सक्रियता का प्रभाव अवश्य है—यह युग युद्धों, स्वाधीनता के लिए संघर्षरत राष्ट्रों के आक्रोश और जड़ समाज के स्थान पर उदार, प्रगतिशील समाज की स्थापना से जुड़े कार्यों का युग है। और सार के रूप में हम प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद दोनों की कहानियों में स्वतंत्रता, अन्याय के प्रति प्रतिरोध, मानवीय मूल्यों के प्रति आग्रह इन कथाओं की अंतर्धाराओं में पाते हैं। ठीक यही स्थिति शेष कहानीकारों की भी है। यही कारण है कि जैसे-जैसे दशक बीतते हैं हम अलग-अलग ढंग के कथाकारों को कहानी रचना में संलग्न पाते हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, त्रृषभचरण जैन, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', यशपाल आदि कुछेक कथाकारों का विशेष उल्लेख अपेक्षित है कि उन्होंने सीधे सीधे विद्रोह की कहानियां लिखकर तत्कालीन भारतीय युवामानव की आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति दी। राहुल सांकृत्यायन, रामवृक्ष बेनीपुरी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, सत्यवती मलिक, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र आदि तक आते आते हिंदी कहानी में एक विशेष प्रकार का रूपांतरण दिखाई देता है और यह रूपांतरण जहां साहित्यिक हिंदी की स्थापना करता है वहीं यह कहानी को वैविध्य से भी परिपुष्ट करता है। इस वैविध्य के मूल में विशाल भारतीय समाज से लेखक का साक्षात्कार है जो स्वाधीनता आंदोलन की तीव्रता के कारण उसे सदैव अपने ही दरवाजे पर होता प्रतीत होता है, राहुल या जैनेंद्र दोनों की कथादृष्टियां भिन्न हैं परंतु भाषागत वक्रता में दोनों जिस प्रकार की अर्थपूर्ण भाषा लिखते हैं वह कहानी की इस यात्रा को कतिपय महत्वपूर्ण उपलब्धियों से संपन्न

करती है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री, अमृतलाल नागर, नागार्जुन, निर्गुण, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाडी, शिवपूजन सहाय, मोहनलाल महतो, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, कमलादेवी चौधरी, उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णुप्रभाकर, अज्ञेय, होमवती देवी आदि कथाकारों में स्वतंत्रता पूर्व के भारत व स्वाधीनोत्तर भारत की अनेक छवियां देखने में मिलती हैं। इन कहानियों तक आते-आते हिंदी कहानी का प्राचीन संस्कार एकदम बदल जाता है। इनमें न कोई अलौकिक तत्व है, न गुरुता का कोई पौराणिक आधार, अपितु एक छोटी, सामान्य स्थिति से सामान्य किस्म के जीवन का वृत इन कहानियों में मिलता है। पहली बार कहानी में 'महाकाव्यों' जैसी 'कुलीनता' की सर्वथा अनुपस्थिति सिद्ध करती है कि विगत की उस चिंतनधारा का अवसान हो गया है जो यह मानकर चलती थी कि महान संदेश का संवाहक केवल कोई देवपुरुष या कीर्तिपुरुष ही हो सकता है। स्वतंत्रतापूर्व की कहानियों के नायकों की सूची बनायी जाये तो हम पायेंगे कि ये वे ही लोग हैं जिन्हें अपने देश को स्वाधीनता दिलाने का नेतृत्व हासिल है या वे क्रांतिकारी हैं या प्रेमीजन या दासता और प्रेम की असफलता के कारण हताशा के बीच झूलता वह युवक जो सहसा 'स्वतंत्रता' के लिए समर्पित हो जाता है। कुल मिलाकर उन्नीसवीं शताब्दी से चली आती कथा यात्रा को स्वाधीनता के रूप में अपने उस लक्ष्य की उपलब्धि का अनुभावन हुआ ही होगा जो एक कथायात्रा का मंतव्य था। पर कहने का हमारा प्रयोजन मात्र इतना है कि स्वाधीनता से पूर्व कथाओं के विषय का 'चक्र' घूम फिर कर किसी न किसी रूप में उस एक बिंदु पर थम जाता था जिसे तब तक अप्राप्य, असंभाव्य, महती स्थिति समझा जाता था। वास्तविक चुनौती वह थी जब लक्ष्य प्राप्त हो गया और कथाकारों के सामने ठीक वैसी ही जीवंत अर्थमय हलचल भरी कहानी लिखने की विवशता आई होगी जैसी कि पूर्ववर्ती कहानियां आभासित करती थीं। परंतु हम पाते हैं कि स्वाधीनता के उपरांत कहानियों का दौर अधिक सक्रिय, अधिक जीवंत और प्रयोगधर्मी दीखता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् की कहानी को समसामयिक प्रभावों की कहानी के रूप में रेखांकित किया गया है और उसे आंदोलनों से संबंधित कहानी माना गया है। 'स्वतंत्रता' की घटना के साथ-साथ विभाजन की दुर्घटना से प्रभावित कहानियां तत्काल और तत्पश्चात भी लिखी गई हैं। विभाजन ने कथाकार के संवेदनशील मन को अधिक व्यथित किया तभी विभाजन की त्रासदी को लेकर उत्तर भारत की कुछ भाषाओं में बहुत सी कहानियाँ लिखी गई हैं, मुख्यतौर पर पंजाबी, उर्दू, बंगाली, असमी, कश्मीरी, हिंदी और भारतीय अंग्रेजी में अधिकांश कहानियां मिलती हैं—यह क्षेत्र जहां विभाजन की विभीषिका से संत्रस्त रहा है वहीं इस क्षेत्र में स्वतंत्रता, क्रांति और सशस्त्र क्रांति की घटनात्मकता से भी भरा रहा है। क्या विभाजन की कहानियों को भी एक आंदोलन की कहानियाँ माना जा सकता है? स्वतंत्रता से पूर्व भी कुछ कुछ आंदोलनात्मक आभास 'ग्राम कहानियाँ'—विद्रोह और विप्लव की कहानियों के रूप में मिलता है। 'चाँद' पत्रिका के फाँसी अंक में जो कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं वे अपने आप में किसी आंदोलन से कम नहीं हैं किंतु स्वतंत्रता के बाद हम कहानी में तरह-तरह के आंदोलन देखते हैं—नयी कहानी, आंचलिक कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, जनवादी कहानी आदि को अधिकांश आलोचकों ने आंदोलनों के रूप में स्वीकार किया है। प्रश्न यह नहीं कि ये कथा प्रयास आंदोलन थे या नहीं थे, प्रश्न यह है कि क्या इनमें कोई प्रवृत्तिगत एकता किसी एक आंदोलन के संदर्भ में और प्रवृत्तिगत विभिन्नता आंदोलनों के संदर्भ में विद्यमान है? यह ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर आंदोलनों के पुरोधाओं या उन फतवेबाज आलोचकों को ही देना होगा जिन्होंने उन्हें स्वीकार किया है या अस्वीकार करते हुए भी उन आंदोलनों को वास्तविक माना है। हमारे विचार में स्वतंत्रता के बाद की कहानी केवल आंदोलनों की कहानी नहीं है। बहुत से ऐसे लेखक हैं जो एक कथाधारा से संबद्ध रहे हैं लेकिन उनकी गणना दूसरे

आंदोलनों में बराबर होती है। भैरवप्रसाद गुप्त कहानी के संपादक थे तो नयी कहानी आंदोलन की शुरुआत हुई थी। कहानी और नयी कहानी के संपादक के बीच उनके संबंधों को नयी कहानी से पूर्ववर्ती कथाकार के रूप में भी देखा जा सकता है या फिर उन्हें ही नयी कहानी के आंदोलन का सूत्रधार भी माना जा सकता है क्योंकि 'कहानी' पत्रिका में नयी कहानियों के प्रकाशन और उसपर विचरण कर सर्वांग रूप से एक कहानी धारा का विधिवत सूत्रपात उन्हीं के द्वारा हुआ है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि श्री भैरवप्रसाद गुप्त जनवादी आंदोलन के नेता व जनवादी कथा के मुख्य पक्षधर रहे हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण मार्कण्डेय, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, जैसे प्रख्यात कथाकारों की पूर्वरूपी व उत्तररूपी कथाछवियों में देखा जा सकता है।

स्वाधीनता के पूर्व की कहानी केवल इस अर्थ में एकआयामी है कि चाहे उसके जो विषय रहे हों, जो भी भाषा या शिल्पगत वैशिष्ट्य रहे हों, वह अपने अंतिम लक्ष्य के संदर्भ में एक कहानी है परंतु स्वतंत्रता के बाद की कहानी मोहभंग, सामाजिक न्याय के लिए संघर्षरत लोगों की पक्षधरता, भूमि के कानूनों के प्रति अवज्ञा का भाव विकसाने वाली कहानी है। वह विषय, भाषागत शिल्प और दूसरे आधारों पर अनेक 'आयामी' कहानी की प्रयोगधर्मिता से संपन्न कहानी है। इस कथाधारा में नये कथाकारों की एक लंबी सूची है जो यह भी सिद्ध करती है कि सहसा पढ़े लिखे कथाकारों की एक लंबी टोली कथाजगत में अवतरित हो नये प्रयोगों के द्वारा भारतीय समाज की जटिलता को वाणी दे रही है। मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, फणीश्वरनाथ 'रेणु', शानी, अमृतराय, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी, ऊषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, श्रीमती विजय चौहान, कृष्ण बलदेव वैद, भीष्म साहनी, राजेंद्र अवस्थी, निर्मल वर्मा आदि अनेक नये कहानीकार स्वतंत्रता के एकदम बाद रचनारत रहे हैं। श्रीकांत वर्मा, रमेशबक्षी, मधुकर गंगाधर, विजय चौहान, महेंद्र भल्ला, रामनारायण शुक्ल, छेदीलाल गुप्त, प्रबोधकुमार, प्रयाग शुक्ल, रवींद्र कालिया, ज्ञानरंजन, गंगाप्रसाद विमल, मुद्राराक्षस, दूधनाथ सिंह, अवधनारायण सिंह, कामतानाथ, मधुकर सिंह आदि १९६० के दौर के कथाकार हैं जिन्होंने पूर्ववर्ती पीढ़ी से नितांत भिन्न कहानियाँ लिखी हैं, कहा जाना चाहिए कि उन्होंने 'वास्तविकता' को टोहने की अपनी अलग ही रचनादृष्टि विकसित की थी। वे एक अर्थ में स्वतंत्रता के बाद की प्रमुख समस्याओं के मुखर प्रवक्ता रहे हैं तथा वैश्विक आधार पर इन रचनाओं के कथाकार अधिक सजग, सचेत व सचेष्ट दीखते हैं किंतु यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि ये कथाकार अपनी पूर्ववर्ती धारा से कई अर्थों में भिन्न हैं। भिन्नता का आलोक हर नयी पीढ़ी उजागर करती है। कुछेक ऐसे कथाकार भी हैं जो इस अर्थ में भिन्न हैं कि उनके यहाँ 'वस्तुरूप' के कुछ नये प्रयोग हुए हैं। विजयमोहन सिंह, जितेंद्र भाटिया, इब्राहीम शरीफ, देवेन गुप्त आदि। वास्तव में कथाकारों की यह सूची बहुत लंबी है इसमें हिमांशु जोशी, महीप सिंह, सुरेंद्र कुमार मल्होत्रा, अतुल गोस्वामी, हरिवंश कश्यप, मनहर चौहान, वल्लभ डोभाल, मणिका मोहिनी, अशोक अग्रवाल, स्वयंप्रकाश, सत्येन कुमार, स्वदेश दीपक, सुरेश सेठ, मिथिलेश्वर, विश्वेश्वर, सुदर्शन नारंग, सुरेंद्र तिवारी, मंजुलभगत, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, ममता कालिया, विजेंद्र अनिल, मणि मधुकर, यादवेंद्र शर्मा चंद्र, जवाहर सिंह, शशांक, संजीव, बलराम, धीरेंद्र अस्थाना, सुरेश उनियाल, रमेश उपाध्याय, प्रियदर्शी प्रकाश, बृजेश्वर मदान आदि अपनी कथाओं के वैशिष्ट्य के कारण याद रखे जाने वाले नाम हैं। हिंदी कथा की सौ वर्ष की इस यात्रा में एक हज़ार से भी कुछ अधिक कथाकारों के नाम जुड़ते हैं। यह आकस्मिक नहीं कि इतने कथाकारों ने विभिन्न दौरों में अपनी मुख्य चिंता एकदम पादार्थिक दुनिया को ही बनाया है। कहना पड़ेगा कि उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी का स्थूल अंतर उन दो दृष्टियों का अंतर है जो इन कथाओं की मूल प्रेरणा है।

क्या हम केवल प्रवृतियों के आधार पर इन कथाओं को कोई ऐतिहासिक नाम दें या उन दृष्टियों के आधार पर नामांकन करें जो धीरे-धीरे इतिहास के परिज्ञान और विज्ञान के चमत्कार के कारण विकसित होती हैं? कहना होगा कि स्वाधीनता के प्रथम आंदोलन अर्थात १८५७ के पूर्व की कहानी विप्लव से पूर्व की कहानी है। विप्लव के बाद की कहानी बीसवीं सदी के अवतरण तक चलती है।बीसवीं सदी का अवतरण स्वयं में एक नये प्रकार के विप्लव का आभास कराता है। इसमें भरा है आदर्श, मनुष्यता, अहिंसा, सांस्कृतिक गौरव का एक अकृत्रिम भाव और सबसे ऊपर है एक विश्वदृष्टि जिसमे हम स्वयं को दुनिया के संदर्भ में देखने के लिए विवश हैं। इसी काल खण्ड में संचरण और संप्रेषण की निकटता ने विश्व को भौतिक आधारों पर ज्यादा करीब किया है। यह स्थिति प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति या सर्वहारा की सफल क्रांति के दौर तक रहती है। क्या हिंदी कहानी के ये प्रथम सत्रह वर्ष (बीसवीं शताब्दी के प्रथम सत्रह वर्ष) एक विशेष प्रकार के उत्साह या आकांक्षा के वर्ष नहीं हैं? निश्चित ही इस अवधि ने समग्र चिंतन को प्रभावित किया है। युद्धोत्तर वर्षों से पुन: द्वितीय विश्वयुद्ध की संध्या तक की रचनात्मकता का एक विशेष प्रकार का वैश्विक मुहावरा है और ठीक यही स्थिति द्वितीय समरोत्तर मानसिकता की है जब सभी मूल्य क्षत-विक्षत प्रतीत होते हैं और मनुष्य यंत्रस्वामी के सम्मुख एक मूल्यहीन वस्तु मात्र रह जाता है। देखा जाये तो इस व्यापक हताशा के बीच रचनात्मक क्रांति दृष्टि निरंतर प्रखर होती चलती है। वह भ्रांतियों, हताशाओं, बंधनों के बीच आबद्ध स्थिति की तमाम दीवारों को पार करती है ओर हर पीढ़ी में अपनी ऊर्जा मुखरित करती चलती है। हिंदी कहानी के सौ वर्षों को यदि युद्धों, हिंसात्मक घटनाओं, विमानवीकरण के समुख एक हस्तक्षेप कहें तो अतिशयोक्ति न होगी, इन सौ वर्षों में सबसे युवतर पीढ़ी की रचनात्मकता को शिल्प, बुनावट, प्रौढ़ भाषागत स्थिति के आधार से परखना, नयी शैल्पिक मुखरता की उपेक्षा करना होगा। हिंदी कहानी निरंतर अपने हर परिवर्तन, परिवर्तन के हर मोड़ पर एक नयी रचनाशीलता से आगे बढ़ती है—इसकी सूची की हर पिछली पीढ़ी को प्रतीक्षा करनी होती है इसलिए कि उस सूची में उसे अपनी छोडी हुई विरासत की प्रगति के सूत्र मिलते हैं।

सौ वर्षों से कहानी सृजन के केंद्र में आसीन है। सौ वर्षों की समग्र घटनात्मकता का सृजनात्मक विवरण या कहें भावधारागत सार कहानियों में प्रवहमान है। इसमें संदेह नहीं कि कोई समाजवैज्ञानिक, साहित्यशास्त्र का वैज्ञानिक दृष्टि संपन्न कोई सृजेता कथाओं में पिरोये सत्य के उन रेखाओं से शताब्दी के संपूर्ण वास्तव को परखेगा, तब कहानियां केवल कहानियां नहीं कहीं जायेंगी बल्कि उन्हें संस्कृति के इतिहास का संवाहक कहना पड़ेगा।

जैसा कि स्वीकार किया गया है, सृजनात्मक साहित्य समाजविज्ञान के लिए आधार सामग्री बन सकता है। अनेक नृवंशशास्त्रियों ने तो 'भाषा' को अपने अध्ययन का आधार तक माना है। इस अर्थ में कहानी, खासतौर से सौ वर्षों की हिंदी कहानी भारतीय समाज के उतार-चढ़ाव को सार्थक ढंग से प्रस्तुत करने में सक्षम है। सार्थक ढंग से कहने का प्रयोजन यह है कि कहानियों में वर्णित समाज एक ओर वास्तविकता के निकट है तो दूसरी ओर वह व्यक्तियों के माध्यम से काल यात्रा में उभरने वाले तनावों, दुरभि संधियों तथा राजनैतिक वातावरण से आभासित होने वाली जनाकांक्षाओं को भी रूपित करने में सक्षम है। वह कहानी चाहे प्रेमचंद से पूर्व की हो या प्रेमचंद के उपरांत की, उसमें निश्चित रूप से व्यक्ति, समाज एवं युग के मनोमंथन के वे सूत्र विद्यमान हैं जिनसे हम उस युग की मानसिकता का अनुमान पाते हैं। स्पष्ट कहें तो एक सौ वर्षों में भारतीय मानव की सुधारवादी, पुनरुत्थानवादी, स्वतंत्रताकामी आकांक्षाओं को स्पष्ट, ठोस रूप देने वाली एक इतिहास दृष्टि कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। तनाव, टूटन, मूल्यहीनता, हताशा, मृत्युबोध, असुरक्षा आदि स्थितियां जिस

मार्मिक ढंग से कथाओं में अभिव्यक्त हुई हैं उतनी शायद अन्य विधाओं में नहीं। कहा जाना चाहिए कि ये कहानियां सौ वर्षों के हमारे ऐतिहासिक चरण की कहानियां हैं। हमारे उस विवेक की अभिव्यक्ति है जिन्होंने इनकी सर्जना की है।

एक सौ वर्ष का इतिहास कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय घटना चाहे न कहाँ जाए जिसने कि सारा साहित्यिक विवेक बदल डाला हो परंतु इस कथा ने स्वयं अपनी पुरानी प्रचलित धारा को तोड़ा है और नये अध्यायों का श्री गणेश किया है।

□

समुद्र : चार कविताएँ

नरेंद्र मोहन

(एक)

समुद्र

शून्य ही शून्य
भीतर-बाहर
दिक् काल में
जल ही जल

गरजती हुई लहरों का
तुमुल संगीत
संगीत में थिरकता आसमान
आसमान को ज़ज़्ब करता जिस्म
और जिस्म
मौन के संगीत में लीन !

(दो)

समुद्र के किनारे

समुद्र
गरजता लहराता आकाश
और आकाश
बे आवाज़ समुद्र
समुद्र के किनारे खड़ा
शून्य में बदल रहा हूँ
और महसूस कर रहा हूँ आकाश
समुद्र से सटा

(तीन)
समुद्र के सामने

समुद्र के सामने
नि:शब्द
भाषाहीन
रचने से पहले
एक रचना को पाने में तल्लीन
समुद्र मुक्त करता हुआ मुझे
मोती-सा चमकता
रचना में।

(चार)

चुपचाप एक समुद्र

एक तार छुआ भर
और हिलोरे लेता समुद्र
दहलीज़ तक आया
और लौट गया
मेरी चुप्पी में समा गया
चुपचाप
एक समुद्र ।

□

दो गीत

रामबिलास शर्मा

(एक)

नागफनी, सुबहे हैं, ऊब भरे सन्नाटे

कुम्हलाई हरियाली
जंगल बेहद उदास
मरूस्थल आ बैठा है
खेतों के आसपास

पूछो मत गाँव के
पोखर का हालचाल
बूंद-बूंद पानी को
प्यासे हैं नदी ताल
इस झुलसे मौसम में, हम कैसे दिन काटें

मिला नहीं रोजगार
इसलिए तो न कहीं
झुंझलाकर, कर बैठा
आत्मदाह गुलमोहर

खेतिहर आँखों में
सपने हैं फसलों के
हर तरफ झगड़े हैं
दंगे हैं नस्लों के

मुसीबतें आदमकद सुख के क्षण बहुत नाटे
नागफनी सुबहे हैं, ऊब भरे सन्नाटे

(दो)

उड़ चले हैं मेघ सारस
नील नभ में पंख खोले

बर्फ आच्छादित शिखर से
फिसलती किरनें सुनहरी
शालवन की फुनगियों पर
टिटहरी-सी धूप ठहरी

अनमनी पछुआ तुनक कर
झील को देती झकोले।

फुहारों से भीगती-सी
वनस्पतियाँ थरथराती
इंद्रधनुषी हिंडोले चढ़
सुनो, बरखा गीत गाती

इन सुहाने क्षणों में यह
कौन बरसा गया ओले।

देह धरती की महकती
नदी नटखट हो गई है
बिजलियाँ आ शिराओं में
आग ऐसी बो गई है

उभर आए तन-बदन पर
कुकरमुत्तों से फफोले।

□

दो कविताएँ

सुरेश विमल

(एक)

मजूरिन

छप्पर समूहों से उठता हुआ
चूल्हों का धुआं...
ओस भीगी खपरैलों पर
उछलते काग...
माटी के बर्तन में खदबदाता
चने का साग...

निराई पर जाने की
तैयारी में जुटी
एक पूरी बस्ती
खेतिहर मजूरों की...

खेत की मेड़ पर बिलबिलाते
बालक से बेपरवाह
लंहगे का एक कोना
कमर में खोंसे
उखाड़ती है खरपतवार...
चार कौर में निगलकर
ज्वार-बाजरी के दो टिकड़े
जी भर पानी पीती है
मजूरिन...

तेज हवा के झोंकों से
हिलते हैं गेहूँ, जौ के पौधे
सुग्गे की चोंच रह-रह कर
बाहर निकलती है
नीम के कोटर से...
गट्ठर बनते जाते हैं
हरी-हरी घास के
खुश है मजूरिन
सिवा इस चिंता के
कि कौन उचायेगा
आखिरी वाली का गट्ठर...

कमर पे बालक को धरे
पसीने की महक उड़ाती
उम्मीद के लंबे-लंबे डग भरती
आएगी बस्ती में जब
वह सांवली देह
और चौड़ी आंखों वाली मजूरिन
आवाज़ लगाएगी मेरी माँ को
मेरे घर के आगे रुक कर
और माँ...
'बस इत्ती सी घास?'
की टिप्पणी के साथ
अठन्नी पकड़ायेगी उसे...
थोड़े असंतोष के बाद
पल्लू से बाँधकर
बहुत जतन से वह अठन्नी
चली जाएगी अपने घर मजूरिन...

जस्ते का एक मैला,
बेडौल कटोरा लिए
घूंघट में हाजिर होगी फिर
एक नियत दुकान पर वह...
अठन्नी थमाकर
बूढ़े दुकानदार को
मांगेगी
चार आने का तेल,
चार आने की मिर्च,
चार आने का गुड़

और चार आने का नमक...

महीनों से देखता हूँ रोज
यही सिलसिला...
देखता हूँ कि हमेशा
एक हरी लूगड़ी और लाल लहंगा
होता है मजूरिन की देह पर
ठीक वैसे ही
जैसे अजायबघर में बने
मजूरिन के एक बुत
पर टंगे हैं...

रोज सुबह
झुंड में चहचहाते हुए
निकलती है जब घर से,
चुग्गे की तलाश में जाती
अपने नीड़ की
गौरैया लगती है
मजूरिन...

□

(दो)

मच्छी री मच्छी

मच्छी री मच्छी
विडंबनाओं का जाल
तेरी आँख में...!

पुजारी उगाहता है
अन्नकूट की सामग्री
पहुँचाता है मखाने की खीर
मुखिया के घर
गांव वालों के हिस्से आती है
पाव रेत और सेर कन वाली
आधी रंधी बाजरी...

गरीबों को
अगले दिन मिलती है
यह भी...

मच्छी री मच्छी
कित्ता बड़ा छल
तेरी ताक में... !

फूट आया चरागाह में
नेता का बग़ीचा
किस-किस ने उसमें
अपने-अपने खेत के
हिस्से का पानी
नहीं उलीचा?

गदराये अंगूर
सूख गई ज्वार...

देखो, भाई देखो...
देख सको तो...

दारुण भूख से बिलबिलाते
हाथ भर की जीभ काढ़े
पथरीली, रेतीली पगडंडियों को
खनोटों की तरह चाहते हुए
ढोर-डंगरों को
देखो....

मच्छी री मच्छी
भूख की नकेल
तेरी नाक में ..

है कोई चित्रकार?
तो बना...
बना रे चित्रकार
लहलहाती हुई फसलें बना
धान काटता हुआ किसान बना
और उसे
निगल जाती हुई सी
महाजन की
एक जोड़ी आंख बना...

हुक्के की गुड़गुड़ाहट से ही
पता चलता है चित्रकार
कि किसकी मुट्ठी में है
उसकी नली...
महाजन कि किसान?
महाजन की जूती का छापा
बहुत गहरा उभरता है
किसान के घर की ओर जाते
दगड़े की माटी में...
बना...बना चित्रकार
जल्दी-जल्दी
एक जोड़ी पांव बना...
उतर आएगा फिर अंधेरा
और रात के बाद
जब फिर से उजाला होगा
तो फेर देगा झाड़ूवाला।
पांव के इन छापों पर बुहारी

झाड़ू गाएगी
गाएगी झाड़ू
सुबह का गीत...

मच्छी री मच्छी
कैसे तू जी लेती
इत्ती आग में...?

□

चार कविताएँ

राजी सेठ

(एक)
अपदस्थ

वहाँ
उस नगर में
उस बरगद के आगे
भूरे रंग के दरवाज़ों वाला
एक घर था
एक माँ थी

घर
उसी नगर में
उस बरगद के आगे
भूरे रंग के दरवाज़ों वाला
अब भी है
माँ अब भी है

पर वह अपने बच्चों की माँ है
घर उन बच्चों का घर है
जिनका बचपन
मुझे
मेरी माँ को
मेरे घर को
धकियाता
मेरे पीछे पीछे
दौडता चला आया

(दो)

आमने-सामने

मैंने तुम्हें देखा
उतराधिकार की सलोनी आंच के अभिमुख नहीं
जैसे एक पीढ़ी
दूसरी पीढ़ी को देखती है
आशंकित
अवाक
सोचते हुए कि
दोनों में से कौन होगा
जो अधिक असंतुष्ट होगा और
पहले हथियार उठाएगा
जानते हुए कि
कौन होगा जो जीतेगा
और कौन मात खाएगा

(तीन)

पहचान

यों तो बहुत है
जो अर्थवान
प्राणवान है

मुझे पर
उतने भर की पहचान है
जो तुम्हें पाने में पाया
तुम्हें खोने में झेला

(चार)

दिया

मिट्टी की देह में
थरथराते आलोक का आवास
मरना और जीना
कितना पास-पास

□

दो कविताएँ

शीला गुजराल

(एक)

ये कहानियाँ

ये कहानियाँ मानो प्लास्टिक के फूल हों
इनमें कोई गंध नहीं,
भड़कीले चमकीले रंग
क्षण भर चमक दिखा
वाष्प बन उड़ जाते हैं,
मन में तनिक अपनी महक नहीं छोड़ते।
नानी की रसीली कहानियाँ सुने
बीसियों वर्ष बीत गए
पर गंध उनकी अभी भी
तरोताज़ा है।
जब भी कभी
नानी की कहानियाँ
स्मृति पट पर उभरती हैं
तो, नथुनों में तुरंत
सोंधी मिट्टी की खुशबू
भूने हुए मक्का और मूंगफली
की मीलों उड़ती गंध
बौराए आम्र वृक्ष की

मीनी-मीनी सुगंध
और जंगली झाड़ियों में
टपकता महकता गुलकंद
ये सब वातावरण कमरे में न जाने
कहाँ से प्रवेश करते हैं?
अकस्मात इच्छा होती है
कि विभिन्न व्यंजनों से सजा सजाया
चांदी का थाल दूर फेंक
बरगद की छाया में बैठ
बगिया में चुराये हुए कलमी आम खाऊँ
और बुढ़िया की बगल में धरे हुए
मिट्टी के मटके से
अंजलि भर ठंडा पानी पी
हरी घास के ठंडे बिस्तर पर
जी भर सुस्ताऊँ।

(दो)

दीपों की कतार

चीथड़ों में लिपटे
जूठन और बासी व्यंजनों
का भोग लगाते
बालकों की पंगत
मैंने देखी—
उनकी आंखों में
ऐसी चमक थी
मानो,
गंगा में विसर्जित
दोनों में
दीपों की कतार हो।

□

दो कविताएँ

(एक)

ध्रुवांतों के मध्य

तारादत्त 'निर्विरोध'

अकेला नहीं था मैं
सभी तो साथ थे मेरे
एक खूबसूरत और जवान
सूरज-सी देह,
अहसासों के बीच
कहीं कुछ तलाशती
पारदर्शी दृष्टि,
समझ की पाठशाला में पढ़ीं
दो आँखें,
ज्ञान की सांस लेती आयु
और विकल्पहीन स्थितियों में
सहज बने रहने का आदी
मेरा मन।
यह सब तुम कैसे जान पाते?
तुम तो द्रष्टा थे,
तुम स्रष्टा कहाँ थे?

(दो)

एक मन निरुत्तर

यह शहर छोड़कर चल दूँ किधर-
कहाँ?
प्रश्न सामने है,
पर उत्तर पास नहीं।
इतना घटित हुआ है मुझपर
अब सहन नहीं होता,
सिर्फ आदमी रह पाने की कोशिश में
अपने जैसा यहाँ
आदमी चयन नहीं होता।
कहाँ अकेले में खो जाऊँ
किस अनजाने ठाँव?
पता पूछने लगी
इन दिनों
हर परिचित वातास,
जैसे विश्वास नहीं।
इस बस्ती में
सब कुछ महँगा, सस्ते हैं
अभियोग,
झूठ यहाँ पैदल चलती है
दुर्घटना-संयोग।
दुविधाओं में जियूँ कहाँ तक
सुविधाओं की सोच?
सुख की सीमाएँ भी मन को
आती रास नहीं।

□

भारतीय संस्कृति के संवाहक कबीर

डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण जीवनधारा को व्यापक और जनहितकारिणी बनाने में कवियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। कहा गया है 'कवय: क्रांति दर्शिन:'। कवि क्रांतिदर्शी होते हैं और इस दृष्टि से वे मानवता के अधिकतम कल्याण के लिए प्राणपन से जूझते हैं। मानवता का पथ आलोकित करते हैं। मध्यकालीन संत परंपरा में कबीर का नाम इसीलिए आदर मे लिया जाता है कि वे मानवता के मसीहा हैं, पैंगबर हैं, उनमें पराई पीर की पहचान है। संस्कृति सिखाती है–आत्मौपम्य दृष्टि। ईशोपनिषद् में कहा गया है कि सभी जीवों में आत्मा के दर्शन कर समत्वभाव रखा जाए। यहाँ किसी से घृणा का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके पीछे उनका दृष्टिकोण था सारे विश्व के भीतर बाहर तक सिवाय एक आत्मा के कुछ नहीं देखना। एक आत्मा की सर्वत्र व्याप्ति की अनुभूति। दो व्यक्तियों या पदार्थों में कोई मौलिक भेद नहीं। कबीर ने इसे परमात्मा की सृष्टि जान समान माना और समत्वबोध का प्रभात जगाया—

दया कौन पै कीजिये कापे निरदय होय।
साईं के सब जीव हैं कीड़ी कुंजर दोय।।

समदृष्टि का अर्थ है समता की शीतलता, भेद में अभेद, द्वैत में अद्वैत की अलख जगाना। सबकी आत्मा को आत्मवत समझना। कबीर ने स्पष्ट कहा है—

सम दृष्टि तब जानिए सीतल समता होय।
सब जीवन की आत्मा लखै एक सी होय।।

गीता में इस ज्ञान को 'सात्विक' ज्ञान कहा गया है।

संक्रांतिकाल में हुए कबीर, जब वादों का वितंडबाद था, मत विभिन्नता थी, राम-रहीम, केशव-करीम, पूजा-नमाज, मंदिर-मस्जिद के भेद को लेकर जन-जीवन अस्त-व्यस्त था। आए दिन रक्तपात मामूली बात थी। इससे पारस्परिक द्वेष को प्रोत्साहन मिलता था। कबीर ने जब एक आत्मा का दर्शन संपूर्ण जगत में किया, तो फिर परमात्मा (उत्कृष्ट आत्मा) में भेद कैसा, अनेकेश्वरवाद कैसा, इतना संघर्ष और मार-काट किसलिए? इसलिए कबीर ने एकेश्वरवाद पर बल दिया। बड़ी सीधी, सरल, सहज शब्दावली में अपनी बात रखी. उन्होंने—

दुइ जगदीश कहाँ ते आए
कहु कौने भर माया

अल्ला राम करीम केशव हरि
हजरत नाम धराया
गहना एक कनक से गहना
तामे भाव न दूजा
कहन सुनन को दुई कर थापे
इक नमाज इक पूजा
....
कह हिंदू मोहि राम पियारा
तुरुक कहै रहिमाना
आपस में दोऊ लरि लरि मूए
मरन न काहू जाना

—कबीर वचनावली

सच पूछिए तो आज धर्म और संस्कृति पर चिंता के बादल इसीलिए मँड़रा रहे हैं कि धर्म, धर्म नहीं रहा, संप्रदाय बन गया, एक संकीर्ण कल्ट बन गया। जहाँ धर्मों के मध्य सहिष्णुता हो, वहाँ असहिष्णुता और द्वेष का बोलबाला हो गया। कहा गया है—'धर्मः यो बाधते धर्मः, न स धर्मः, कुधर्म तत्' अर्थात् जो धर्म अन्य धर्मों को बाधा पहुँचाता है वह धर्म है ही नहीं, कुधर्म है। कबीर ने एकेश्वरवाद की सहज, सरल जनसामान्य के समझ में आनेवाली भाषा में नाना संप्रदायों और धर्मांधकों की खिल्ली ही नहीं उड़ाई, इसके द्वारा संस्कृति और मानवता का पथ-प्रशस्त किया। पारस्परिक संघर्ष से लोगों को ऊपर उठाने का महान संदेश दिया।

इसके साथ जरूरत थी धर्म और संस्कृति के नाम पर फैले बाह्याडंबरों, कर्मकांड के षोड़शोपचार को धराशायी करने की। उसके खोखलेपन का ऐसा पर्दाफाश करना कि मोह की जड़िमा से ग्रस्त जीवों की आँखें खुलें, वे रोशनी में आकर नए सिरे से सोच सकें। इसके लिए एक साथ कबीर ने मंदिर, मस्जिद, पूजा-नमाज, जाति-पाँति पर कुठाराघात किया। उन्होंने शरीर की संरचना के आधार पर सबको एक बताया और सबमें उसी एक की ज्योति के दर्शन किए—

एक मांस एक मलमूतर एक बूँद एक गूदा।
एक ज्योति से सब है सिर जा कौन बामन कौन सूदा।।

यही व्यापकत्वविधायिनी दृष्टि अद्वैत, अभेद की ओर ले जाती है, समता का द्वार खोलती है, मानव की चेतना को ऊर्ध्वमुखी बनाती है और सारी आसक्तियों और दुर्बलता के कर्दम में आध्यात्म का कमल खिलाती है।

एकेश्वरवाद के साथ अपेक्षा है सर्वात्मवाद की। चराचर जगत में उसी आत्मा (परमात्मा) की अनुभूति करना। इस साधना तक पहुँचकर द्वेष और विरोध का तिरोहण हो जाता है। तुलसी कहते हैं—

'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।'

ईशोपनिषद् में कहा गया है—'ईसावास्यमिदं सर्वम्' और कबीर घट-घट में उस पिंड के दर्शन कर मुग्ध हो उठते हैं—

पावक रूपी साँइयाँ सब घट रहा समाय।
चित चमकत लागै नहीं तातें बुझि बुझि जांय।।

लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल।
घट-घट में वो साईं रमता कटुक वचन मत बोल रे।

चराचरजगत में उस प्रभु के दर्शन की अनुभूति की जाए, इसके लिए 'अहं' का विसर्जन अपेक्षित है और 'इदम्' की सार्वभौमिक सत्ता में विलय भी। हमारी संस्कृति समष्टि का प्रभाती गाती है, 'अहं' का बलिदान कर विराट की आरती सँवारती है। प्रसाद की 'कामायनी' में संघर्ष और द्वेष से दूर जिस सामरस्य समाज की परिकल्पना की गई है वह प्रयाण दिखाया गया है। मानवीय जीवन साधना की सर्वोच्चता का प्रतीक है। वहाँ का यात्री साधना के उस शिखर पर पहुँच गया है, जहाँ 'मैं' की कोई गुंजाइश नहीं है। कोई इयत्ता नहीं है। कबीर के इस क्षेत्र में प्रवेश की अनिवार्य शर्त है— शीशदान।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
शीश उतारे मुइ घरे तब पैठो घर माँहि।।

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समाहिं।।

कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ।
जो घर जारा आपनो चले हमारे साथ।।

हमारी संस्कृति की जड़ें त्याग के जल से सीची जाती हैं। त्याग की यह भावना उत्तरोत्तर विकसित होती हैं, जिसकी पहली और अनिवार्य शर्त है— अपने अहं का त्याग। यहीं से मानव ऊपर उठने लगता है। यही संस्कार देता है, वह संस्कृत होता है, आंतरिक परिमार्जन होता है। बाह्य सुरुचि-संपन्नता सम्यता की निशानी है। वहाँ अहं की दुदुंभी बजती है। पर संस्कृति आंतरिक परिष्कार की भाषा है। 'स्व' को मिटाकर 'पर' में प्रवेश का प्रयास है। ऐसा प्रभात सदा अंतर से फूटता है, जो संस्कृति का भव्य परिणाम है—

यह न बाह्य उपकरण भार बन, जो आए ऊपर से,
आत्मा की यह ज्योति फूटती सदा विमल अंतर से।

दिनकर

'अहं' का विलय और 'इदम्' के राज्य में प्रवेश कर्मकांड के कांतार का परित्याग करा देता है। फिर मंदिर-मस्जिद, कावा-कैलाश, तीर्थ-हज की कोई जरूरत नहीं रह जाती। पूरा शरीर क्या-रोम रोम प्रभु की अगुवाई में पलक पाँवड़े बिछाए रहता है और मिलन की सहज ही तैयारी हो जाती है—

नैनों की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय।।

फिर, ऐसे प्रियतम को पत्र लिखने की क्या अपेक्षा, जो तन, मन और आँखों में हर घड़ी छाया रहे—

प्रीतम को पतिया लिखूँ, जो कहुँ होय विदेस।
तन में मन में नैन में, ताको कहाँ संदेश।।

यदि भावात्मक एकता, मानवीय एकता, विश्वबंधुत्व (जो संस्कृति का मूल घटक है) की बात की जाए, तो कबीर आदि संतों और सूफियों के अप्रतिम योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

संस्कृति मानवीय विवेकशीलता का वैचारिक नैरंतर्य है। भावना है। संस्कृति मनुष्य का जीवनव्यापी दृष्टिकोण है। हम जैसे विचारों में विश्वास करते हैं, वैसे ही हो जाते हैं हमारे कर्म भी वैसे

हो जाते हैं। निवृत्ति की माला जपते-जपते हम गुलाम हो गए और प्रवृत्ति की आराधना करते ही हमारी गुलामी चली गई। संस्कृति न मात्र प्रवृत्ति है और न केवल निवृत्ति। संस्कृति दुराग्रह नहीं सहनशीलता है। यह किसी की पक्षपाती नहीं, वरन् संतुलन सामंजस्य की कामी है। संस्कृति युद्ध नहीं, समझौते का नाम है। आज की अशांति, कुंठा, तनाव का कारण विश्व का दो गुटों में (पूँजीवाद और समाजवाद) बँट जाना भर नहीं है। इस संकट का मूल कारण है—निवृत्ति और प्रवृत्ति के संघर्ष में निवृत्ति की घोर पराजय। जिस प्रकार निवृत्ति की अति दीनता और दौर्बल्य की जननी है, वैसे ही प्रवृत्ति की अति राक्षसी वृत्ति को प्रोत्साहन देती है। दिनकर लिखते हैं, ''प्रवृत्ति की गाढ़ी स्याही में जब तक निवृत्ति का पानी मिलाया नहीं जाएगा, तब तक शांति की कविता नहीं लिखी जा सकती।'' कबीर निवृत्ति और प्रवृत्ति के दो ध्रुवों पर दोलायित न होकर एक जगह टिकते हैं, स्थिर होते हैं, दोनों के मध्य संतुलन बनाते हैं—

साईं इतना दीजिये, जामे कुटम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधू न भूखा जाय।।

मन लागो मेरो यार फकीरी में

अपरिग्रह, संतोष, 'परधन धूरि समान' के बिना प्रवृत्ति और निवृत्ति के मध्य संतुलन नहीं लाया जा सकता—

कबिरा साईं मुज्झ को रूखी रोटी देय।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ रुखी छीनि न लेय।।

संस्कृति के आंतरिक गुण हैं, धृति, क्षमा, शील, अस्तेय, इंद्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य अक्रोध। कबीर के काव्य में दैनिक जीवन से उदाहरण देकर इनकी सरल और हृदय संप्रेष्य अभिव्यक्ति मिलती है। कहना नहीं होगा कि कबीर ने 'संसकिरत है कूप जल, भाखा बहता नीर' कहकर निर्मल लोकभाषा के जल से सरस्वती का अभिषेक किया। लोकजीवन के अतल तल में व्याप्त गहरे जीवन बोध को उकेरा, उसमें बसी संस्कृति के अवदानों और उत्स को उचित आयाम दिया, औचित्य की वाणी दी। सर्वोपरि और विस्मयकारी है लाख भिन्नताओं और विषमताओं में भी उनकी दृष्टि अभिन्नता पर है, अभेद और साम्य पर है, अद्वैत पर है—यही उनकी क्रांतिधर्मिता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

कबीर परमज्ञान के ही नहीं, लौकिक जीवन के भी परमद्रष्टा थे। प्राचीन काल में उपनिषद् आदि से चले आ रहे जो जीवन मूल्य थे उन्हें कबीर ने सामान्य जन को सहज धरातल पर प्रतिष्ठित किया।

आधी अरु रूखी भली सारी सों संताप।
जो चाहैगा चूपड़ी बहुत करैगा पाप।।

रूखा सूखा खाय कै ठंडा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपड़ी मत ललचावै जीव।।

खोद खाद धरती सहै काट कूट बनराय।
कुटिल वचन साधू सहै और से सहा न जाय।।

जहाँ दया तहाँ धर्म है जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है जहाँ छिमा तहाँ आप।।

सील छिमा जब ऊपजै अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचै नहीं लाख कथै जो कोय।

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है ताके हृदय आप।।

प्रेम पीति का चोलना पहिरि कबीरा नाच।
तन मन तापर वार हूँ जो कोई बोलै साँच।।

दसो दिसा से क्रोध की उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साधु की तहाँ उबरिए भागि।।

इस प्रकार मध्ययुग के अंधकार में मानवीयता, सहिष्णुता और समता का आह्वान करने वाले कबीर भारतीय संस्कृति के महान संदेश वाहक थे।

□

पुस्तकें

रोशनी की पगडंडियाँ

वेदप्रकाश अमिताभ

व्यक्ति और परिवेश के द्वंद्वात्मक संबंधों का साक्ष्य

अपनी जीवन-यात्रा को लिपिबद्ध करने का रामदरश मिश्र का संकल्प कई मायनों में सार्थक और उल्लेखनीय है। आम तौर पर इस तरह के जीवन वृत्त और आत्मस्वीकार रचनाकार के व्यक्तित्व के इर्दगिर्द घूमते हुए कुछ अज्ञात प्रणय संबंधों की सनसनी देने और ज्ञात संदर्भों की व्याख्या-पुनर्व्याख्या करने पर अधिक जोर देते रहे हैं। हंसा वाडकर, अमृता प्रीतम, दुर्गा खोटे, कमलादास आदि के आत्मवृत्त में व्यक्ति और परिवेश के द्वंद्वात्मक संबंधों की व्याख्या नाममात्र की है। कृशनचंदर, हंसराज रहबर और हरिवंशराय 'बच्चन' की आत्मकथाओं में अवश्य उस परिदृश्य को भी महत्व दिया गया है जो रचनाकार की संवेदना और समझ को गढ़ने में गंभीर भूमिका निभाता है। रामदरश मिश्र की जिंदगी के सफरनामे के दो खंड 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' और 'रोशनी की पगडंडियाँ' आ चुके है। इनमें एक ओर रामदरश मिश्र का जीवन-संघर्ष मुखर है, दूसरी ओर उनकी रचना-प्रक्रिया और रचना-दृष्टि के मूल स्त्रोत और उत्प्रेरक तत्वों की स्पष्ट पहचान विद्यमान है। वह समूचा परिवेश अपनी खूबियों और खामियों के साथ उभरा है, रचनाकार के निर्माण में जिसका योग सर्वाधिक है। यही कारण है कि 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' के 'अपनी ओर से' में मिश्र जी ने स्पष्ट किया है—'जहाँ मैं खड़ा हूँ' यूँ तो मेरी जीवन-यात्रा का वृत्तांत है किंतु वास्तव में यह उस परिवेश का वृत्तांत है, जहाँ मेरे जीवन और साहित्य की चेतना, अनुभव और मूल्यबोध निर्मित हुए।' अपनी जीवन कथा के बहाने ग्रामीण-जीवन के हादसों, संघर्षों और मूल्यों को उकेरने का एक सुपरिणाम यह निकला है कि लेखक का दुखदर्द राप्ती-गोर्रा की गुंजलक में जी रहे कछार के असंख्य सामान्य व्यक्तियों की पीड़ा से भरे-पूरे परिवेश का साक्ष्य बन गया है। तमाम अभावों और असंगतियों के बावजूद कछार की जमीन से रामदरश मिश्र की संपृक्ति अटूट है : 'इस जमीन में ही मेरे अनुभव बने हैं, मेरी दृष्टि बनी है और बना है वह देसीपन जो मुझे चमकीले विदेशी आकर्षण के प्रति आतुर नहीं होने देता।' इस जमीन के विभिन्न आयामों-परिवार, गाँव, स्कूल, खेतीबारी आदि का विशद बयान 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' में उपलब्ध है।

'रोशनी की पगडंडियाँ' में शिक्षा प्राप्त करने के लिए छोटी-छोटी पगडंडियों पर भटकने और

अंततः एक दिशा पा लेने का संदर्भ है। 'दो शब्द' में रामदरश मिश्र ने लिखा है कि इन पगडंडियों ने उन्हें बहुत कुछ दिया है :' माना कि यह यात्रा तपाती है, हैरान करती है, पाँवों में छाले डालती है, किंतु धरती से जुड़े रहने और अनेक समविषम जीवन-घाटियों से गुजरने का अनुभव भी तो देती है। इन पगडंडियों ने मुझे शिक्षा के छोटे-छोटे लक्ष्यों तक पहुँचाया है, इतना ही नहीं, इन्होंने मुझे जीवन के मूल्यवान् अनुभव भी दिए हैं। इसलिए मेरे लिए ये रोशनी की पगडंडियाँ हैं।' ढरसी स्कूल से लेकर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय तक की शिक्षा-यात्रा में कई मोड़ हैं, कई विडंबनाएँ हैं। इनके समानांतर राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक संक्रमण के स्वर प्रवहमान हैं। सिर्फ मैट्रिक और विशेष योग्यता प्राप्त रामगोपाल शुक्ल जिस लगन और मेहनत से ढरसी स्कूल का संचालन-अध्यापन करते थे, उसे देखकर लगता है कि आज के बेहद खर्चीले कान्वेंट स्कूलों की तुलना में वे गुरुकुलनुमा स्कूल और उनके अध्यापक कितने महनीय रहे होंगे। राष्ट्रभाषा ढरसी विद्यालय से ही मिश्र जी का कवि रूप विस्तृत और सार्वजनिक हुआ। उन्होंने पहली बार वहीं संस्कृत पाठशाला में आयोजित कवि-सम्मेलन में काव्यपाठ किया। इस पहले अनुभव पर उनकी टिप्पणी है :'... प्रथम प्रीति की सुगंध की तरह इस कवि-सम्मेलन की अनुभूति मेरे लिए कुछ और ही थी। कवियों के प्रति जो निष्ठा और उत्सुकता उस समय मेरे भीतर जगी थी वह बहुत गहरी और पवित्र थी।'

नेहरू जी को पहली बार देखने-सुनने का अनुभव भी लेखक के लिए 'अद्‌भुत' रहा। इसी दौरान कुंभ मेले में जाने का अवसर मिला और यह अनुभव भी कम मूल्यवान् नहीं था। तब मेले के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक वैभव के साक्षात्कार के बीच मेले के कुछ भद्‌दे अनुभव चुभे भी थे। धर्म के नाम पर ठगी, भिखमंगेपन आदि के दृश्य तब भी अरुचिकर थे और आज भी सालते हैं। मिश्र जी ने अपने राग-विराग को छिपाया नहीं है। चाहे अंग्रेजी से अनबन और अरुचि का प्रसंग हो या मानविकी में प्रथम श्रेणी पाने वालों की योग्यता को संदेह की दृष्टि से देखने की मानसिकता, मिश्र जी अपनी बात को बगैर लागलपेट के कह सके हैं। शिक्षा जगत् से संबद्ध उनकी कई तीखी टिप्पणियाँ उनकी बेबाकी के साथ उनके तत्कालीन सोच को भी व्यक्त करती हैं। काशी विद्यापीठ में पत्रकारिता के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक बताये जाने पर वे क्षोभ से भर उठते हैं : 'हिंदी की उपाधियाँ किस काम की, यदि राष्ट्रीय संस्थाओं में भी शिक्षा का माध्यम अंगरेजी ही हो।'

यह बेबाकी सामाजिक विसंगतियों को लेकर भी द्रष्टव्य है। बहन कमली के विवाह-प्रसंग में मिश्र जी ने जो कुछ लिखा है वह यथार्थ को निकट से देखने-भोगने और सही परिप्रेक्ष्य में सोचने की गवाही देता है : 'क्या ससुराल जाने वाली प्रत्येक लड़की अभिमन्यु नहीं है? अभिमन्यु तो अपने विरोधियों के विरुद्ध युद्ध करता हुआ, उन्हें मारता हुआ मरा, वह लगातार उसका भेदन कर निकलने की कोशिश करता रहा, लेकिन लड़की को किसी के विरुद्ध लड़ने का न अधिकार है, न शक्ति।' बड़ी बहन की त्रासदी का पूरा प्रसंग पढ़कर जाना जा सकता है कि 'बेला मर गयी', 'एक औरत एक जिंदगी', 'लड़की' जैसी कहानियों में नारी की यातना और संघर्ष को जो स्वर दिया है, वह मात्र वैचारिक न होकर प्रत्यक्षानुभूति से अनुशासित है। बेबाक कथन की बानगी बनारस में शिक्षा-प्राप्ति के दौरान संपर्क में आये व्यक्तियों के स्वभाव, व्यक्तित्व, रचनाशीलता आदि के परिचय में भी द्रष्टव्य है। शंभूनाथ सिंह और उनकी शिष्य मंडली को लेकर एक जगह लिखा गया है—'शंभूनाथ सिंह गाते थे तो गाते-गाते जानबूझ कर कोई पंक्ति भूल जाते थे, जिसकी उनकी शिष्यमंडली याद दिलाती थी। ... शंभूनाथ जी अपने शिष्यों को खूब जमाते थे। मंच पर, मंच के बाहर उनकी खूब प्रशंसा करते थे। उनके शिष्य उन्हें जमाते थे।' इसी तरह त्रिलोचन शास्त्री से भरपूर आत्मीयता के बावजूद वे उनकी

'चंपा' कविता के विषय में लिखते हैं : 'यद्यपि भिन्न-भिन्न कारणों से इस कविता की चर्चा करने वाले लोग तब भी थे और अब भी हैं किंतु मुझे ऐसा कोई नहीं मिला जो समझा सके कि यह कविता और इसी तरह की शास्त्री जी की कई कविताएँ (जैसे नगई महरा) कविता कहाँ से है। 'नामवर सिंह के संबंध में उनका अभिमत इस प्रकार है:—'नामवर जी वास्तव में क्या हैं, इसे मैं तो क्या पूरा हिंदी संसार अभी तक ठीक से नहीं जान सका किंतु उनका सहपाठी और साथी होने के कारण इतना जरूर जानता हूँ कि वे बाहर से चाहे जितने वस्तुवादी हों, भीतर से भाववादी हैं। यही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है और यही उनकी विडंबना भी।' अपने गुरुजनों-पद्मनारायण आचार्य, श्री कृष्णलाल, जगन्नाथ शर्मा आदि के विषय में मिश्र जी ने बहुत सहज और निर्भ्रांत भाव से लिखा है।

'रोशनी की पंगडंडियाँ का एक खास हिस्सा काशी हिंदू विश्वविद्यालय से संबंधित है। चौदहवें अध्याय से लेकर कृति के अंत तक विश्वविद्यालय के उस परिवेश का जीवंत चित्रण हुआ है, जिसमें मिश्र जी ने मैट्रिक के बाद की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। विश्वविद्यालय के वातावरण को 'बहुत सुंदर थी यह दुनिया' कहकर व्यक्त किया गया है। शायद बी.एच.यू. के वातावरण ने रामदरश मिश्र को इसलिए भी अभिभूत और आश्वस्त किया कि वह गाँव की जमीन पर बसा था और गाँव के भीतर का रूप, रस, गंध, स्पर्श उसमें रचा-बसा था। उन दिनों मालवीय जी बीमार चल रहे थे। विश्वविद्यालय में मानविकी के सारे विषयों का अध्यापन हिंदी में होता था। हिंदी विभाग में नंददुलीरे बाजपेयी, जगन्नाथ शर्मा, हजारी प्रसाद, द्विवेदी, श्री कृष्णलाल, राकेश गुप्त आदि प्रतिभाएँ अध्यापन से जुड़ी थीं और जो छात्र उन दिनों शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, उनमें आज के बहुत से प्रातिभ रचनाकार और समीक्षक थे। कविता प्रतियोगिता में विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व नामवर सिंह और रामदरश मिश्र किया करते थे। शिवमंगल सिंह 'सुमन', त्रिलोचन, ठाकुर प्रसाद सिंह, शिवसागर मिश्र, शिवप्रसाद सिंह आदि उन दिनों वहाँ अध्ययनरत थे तथा मिश्रजी के निकट संपर्क में रहे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को मिश्र जी ने भावुकता और श्रद्धा के साथ स्मरण किया है। 'व्यक्तित्व का खुलापन 'उन्हें उनकी सबसे बड़ी विशेषता लगी। उनसे कबीर पढ़ना वे एक अद्भुत अनुभव मानते हैं। मिश्र जी को साहित्य पढ़ने-पढ़ाने की जीवनवादी दृष्टि द्विवेदी जी से मिली है। द्विवेदी जी ने उनके पहले कविता संग्रह 'पथ के गीत' की भूमिका लिख कर उसे गौरवान्वित किया था। विश्वविद्यालय में निराला का आगमन और महात्मा गांधी का अवसान इस अवधि की दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं, जिन्होंने रामदरश मिश्र को बहुत गहराई तक प्रभावित किया। शिक्षा प्राप्ति के दौरान मिश्र जी के व्यक्तिगत जीवन की दो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई। पहली पत्नी के निधन के बाद उनका पुनर्विवाह और भारतीय गणतंत्र के चुनाव में एम.एल.ए. के लिए उनकी उम्मीदवारी। मिश्र जी निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में खड़े हुए थे। उनकी यह निर्दलीयता आज भी बरकरार है और वे कभी विशाल जनसमुदाय के अतिरिक्त किसी से प्रतिबद्ध नहीं हुए। यह जानना दिलचस्प होगा कि उसी सीट से श्री विद्यानिवास मिश्र भी उम्मीदवार थे।कतिपय वैधानिक आपत्तियों के चलते रामदरश मिश्र का पर्चा खारिज हो गया और हिंदी साहित्य के सौभाग्य से वे राजनीति की काजल-कोठरी में जाने से बच गये। कृति का समापन इस सूचना के साथ हुआ है कि एम.ए. में वे प्रथम श्रेणी में प्रथम रहे और पारिवारिक दायित्व को सँभालने की चेतना उनमें सुगबुगा रही थी। भविष्य को लेकर आश्वस्ति और संदेह का द्वंद्व मन को मथ रहा था,' पीछे मुड़ कर देख रहा था—रोशनी की अनंत पंगडंडियाँ थीं जो टूट-टूट कर भी मुझे एक-दूसरे से जोड़ती चली गयी थी और अंततोगत्वा इस मंजिल पर पहुँचा दिया और मैं फिर आगे की ओर देख रहा था—दायित्व से भरा हुआ एक भविष्य जो कभी कोई रूप लेता था, कभी एकदम निराकार हो जाता था।'

मिश्र जी का यह सफरनामा उनके उपन्यासकार और कवि की मिली-जुली सृष्टि है। उपन्यासकार अधिक मुखर है, इसलिए यह पठनीय किंतु विचारोत्तेजक उपन्यास जैसा लगता है। इसमें आये कुछ चरित्र रामोगोपाल शुक्ल, बाबा सत्यव्रत, भगतसिंह, बिंदेश्वरी प्रसाद साहू आदि अविस्मरणीय हैं। तथ्यों के प्रति प्राय: वस्तुपरक दृष्टिकोण अपनाया.गया है। इसीलिए कई स्थलों पर मिश्र जी अपनी दुर्बलताओं को साफ-साफ कह सके हैं। लेखक ने विश्वविद्यालय से संबद्ध प्रकरण में नामवर सिंह और त्रिलोचन पर अपनी राय दो-दो स्थलों पर व्यक्त की है। अच्छा होता, ये अंश एक साथ होते।

'रोशनी की पगडंडियाँ' केवल पठनीय और रोचक आत्मवृत्त मात्र नहीं है। यह शिक्षा और साहित्य से जुड़े अनेक मुद्दों को बतौर प्रश्नचिन्ह उठाती है। ये मुद्दे आज भी अप्रासंगिक नहीं हैं। मिश्र जी के व्यक्तित्व और साहित्य के पृष्ठाधार और बुनावट को समझने के लिए तो इसका महत्व असंदिग्ध है ही। हिंदी में 'बच्चन' के आत्मवृत्त के बाद इतना 'तुलित विचारपूर्ण और पठनीय आत्मस्वीकार संभवत: अन्य कोई नहीं है।

□

दृश्यांतर: आंतरिक लय में बँधी रचनाधर्मिता

डॉ. रामदरश मिश्र

कई विधाओं में लिखनेवाले लेखक की महत्वपूर्ण रचनाओं का यदि एक स्थान पर संकलन किया जाय तो सहज ही यह प्रश्न उठता है कि यह संकलन कई विधाओं की रचनाओं का एकीकरण है या उसकी कोई आंतरिक लय है। लेखक की भिन्न-भिन्न विधाओं की रचनाओं को लेकर यह पूछा जाता है कि इनके पीछे विविध प्रकार के कथ्य का सर्जनात्मक दबाव है या लेखक ने फैशनवश या औरों की देखा-देखीकई विधाओं में लिखा है। यदि यह मान लिया जाय कि उसने विभिन्न प्रकार के तथ्यों के दबाव से उनसे संबद्ध विधाएँ चुनी है तो फिर यह सवाल भी होता है कि विभिन्न विधाओं की रचनाओं में क्या लेखक की कोई केंद्रीय चेतना उपस्थित है जिससे कहा जाय कि ये विभिन्न विधाओं में होकर भी एक ही लेखक की रचनाएँ हैं।

'दृश्यांतर' में नरेंद्र मोहन एक कवि, एक आलोचक और एक नाटककार के रूप में उपस्थित हैं।अर्थात् उनकी सर्जनात्मक और समीक्षात्मक दोनों छवियों का प्रतिनिधित्व हुआ है। उनका नाटककार रूप नया है और उसकी शक्तियों और उपलब्धियों के बारे में अभी कुछ कहना जल्दबाजी होगी किंतु वे समीक्षक और कवि के रूप में काफी चर्चित हो चुके हैं। समीक्षा संबंधी उनकी कई महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी समीक्षा पुस्तकें प्राय: उनके समीक्षात्मक निबंधों का संग्रह हैं जिन्हें उन्होंने किसी पुस्तक का संपादन करने की प्रक्रिया में या पत्र-पत्रिकाओं के लिए समीक्षा करने की प्रक्रिया में लिखा है। उनमें से कुछ चुने हुए निबंध-जैसे 'विचार कविता की भूमिका', 'आख्यान से बिंब से विचार तक ही अंतर्यात्रा', समकालीन कविता का केंद्रीय सरोकार, आधुनिकता : कहानी के संदर्भ में, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आज की हिंदी आलोचना आदि दृश्यांतर में संग्रहीत हैं। लंबी कविता पर उन्होंने काम किया है तत्संबंधी विचार साक्षात्कार—'लंबी कविताओं के लिए अनुभव की बड़ी पूँजी और प्रतिभा दरकार है'—में व्यक्त किये हैं।

नरेंद्र मोहन की आलोचना साहित्य की प्राय: सभी प्रमुख विधाओं तक जाती है। कविता, कथा, नाटक, आलोचना, निबंध सभी विधाओं से संबंधित कृतियों की पहचान और आकलन उनकी आलोचना में हुआ है। अत: कहा जा सकता है कि उनकी आलोचना का क्षेत्र व्यापक है। यानी वे सही अर्थों में आलोचक हैं। वे अपनी सुविधा के अनुसार नहीं, आलोचना-कर्म के दायित्व के अनुसार हर

विधा में आनेवाली महत्वपूर्ण कृतियों और आंदोलनों से रू-बरू होते हैं और अपनी दृष्टि और पकड़ के स्तर पर उनसे जूझते हैं। नरेंद्र मोहन आधुनिक चेतना संपन्न आलोचक हैं किंतु प्रचलित अर्थ में आधुनिकतावादी नहीं हैं। उनकी दृष्टि सामाजिक मूल्यवत्ता संपन्न आधुनिक चेतना की दृष्टि है जो हर विधा की अपनी शर्तों के बीच बनी हुई और उन शर्तों को संकीर्ण या व्यापक करती हुई कृतियों की निजी कलात्मक पहचान उभारती है तथा उनकी मानवीय मूल्यवत्ता की छान-बीन करती है। कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने समय के काव्य कथा तथा आलोचना साहित्य के परिदृश्य का प्राय: पूरा-पूरा जायजा लिया है और इस प्रक्रिया में कुछ खास बिंदुओं पर जम कर वैचारिक संघर्ष किया है। विचार कविता और लंबी कविता पर किया गया उनका कार्य विशेष महत्व रखता है। इन दोनों ही बिंदुओं पर उन्होंने बलाघात देकर उनसे संबंधित शक्तियों और संभावनाओं की एक व्यवस्थित पहचान उभारी यह अपने आप में एक मूल्यवान कार्य है।

कवि के रूप में नरेंद्र मोहन तब आये जब वे आलोचक के रूप में जाने जा चुके थे। उनके प्रथम संग्रह से उनके कवि-रूप का बहुत आश्वस्तिकारी परिचय नहीं मिलता लेकिन निरंतर उनका कवि रूप निखरता गया और इकहरे आत्मालापों या संवादों वाली कविता अनुभव बिंबों से सघन होती गयी। वाचालता की जगह बिंबों से पूरी सघन अर्थ सांकेतिकता उभरती गयी। 'एक अग्निकांड जगहें बदलता' संग्रह की कविताओं और विशेषतया इसी नाम की लंबी कविता में नरेंद्र मोहन के कवि रूप की एक अच्छी खासी पहचान बनी। यह विचार करने की बात है कि एकाएक प्रतिभा के विस्फोट की कोई आहट न लिए हुए शुरू होने वाली कविताएँ क्यों धीरे-धीरे चुपचाप सघन कविताएँ बनती गयीं और अपनी पहचान बनाती गयी? मुझे इसकी यही वजह मालूम पड़ती है कि प्रतिभा अर्जित भी की जाती है और अर्जित की जाने वाली प्रतिभा मात्र स्वयंभू प्रतिभा से अधिक साथ देती है। स्वयंभू प्रतिभा को भी धीरे-धीरे अपने को सघन और व्यापक करना होता है और यह व्यापकता तथा सघनता आती है सामाजिक जीवन के साथ बनते सरोकारों से। समकालीन सामाजिक जीवन की चिंता, तकलीफ जब हमारा अनुभव बनती है तब रचना अधिक-अर्थवान और विश्वसनीय बनती है और बनती चली जाती है। नरेंद्र मोहन की एक बड़ी पूँजी है उनकी मानवीय चिंता और सामाजिक सरोकार जिसकी जड़ें गाँव की उस जिंदगी में हैं जिसे कवि ने बचपन में जिया है। अपनी आरंभिक कमजोरियों के बावजूद कवि क्रमश: आगे बढ़ा है, क्रमश: उसकी कविताएँ लोगों का ध्यान खींचती गयी हैं। सामाजिक जीवन के अनुभव और मानवीय चिंता की ठोस भूमि पर क्रमश: आगे बढ़ते रहना ठोस प्रगति है।

दृश्यांतर में एक आंतरिक लय है यानी विविध विधाओं की रचनाओं में एक केंद्रीय सूद है जो इन सारी रचनाओं को लेखक की एक रचना में परिणत करता है। वह सूद है अपने समय के सामाजिक जीवन का अनुभव चिंता और मूल्य-दृष्टि। यह सही है कि नरेंद्र मोहन ने अपनी अनेक आलोचनाओं में ऐसी रचनाओं के महत्व को रेखांकित किया है जो कलात्मक स्तर पर एक नयापन तो देती हैं लेकिन सामाजिक जीवन के स्तर पर हमें आश्वस्त नहीं करती बल्कि निषेधात्मक रुख अख्तियार करती है लेकिन यह उनकी आलोचना का मुख्य स्वर नहीं है प्रमुख स्वर है अपने परिवेश की सच्चाइयों और मूल्यों की पहचान करते चलने वाले साहित्य की महत्ता को रेखांकित करना और यही स्वर उनकी रचनाओं का भी है। अपनी अनेक शक्तियों और सीमाओं के साथ यही स्वर दृश्यांतर का केंद्रीय स्वर है यानी नरेंद्र मोहन के लेखन का स्वर।

दृश्यांतर: किताब घर/मेन रोड/गांधी नगर/दिल्ली/पृ. डिमाई २३९/मूल्य एक सौ रुपये।

पुस्तक चर्चा

मनुष्य और कविता का शाश्वत रिश्ता

योगेंद्रदत्त शर्मा

तीस जून की वह बादलों भरी शाम। बारिश थम चुकी थी और आकाश में सतरंगे बादल सूरज से लुका-छिपी का खेल खेल रहे थे। यह तो आकाश का लुभावना दृश्य था और इधर धरती पर राजधानी नई दिल्ली की व्यस्त सड़कों के मुहाने पर बने प्रेस क्लब में भी लगभग इतना ही आकर्षक दृश्य उपस्थित था। हिंदी के जाने-माने साहित्यकार एक जगह एकत्रित हो रहे थे-अपने एक आत्मीय बंधु को बधाई और शुभकामनाएँ देने के लिए। इस स्नेह-मिलन का आयोजन किया था राजधानी की साहित्यिक-सांस्कृति संस्था 'विमर्श' ने। आयोजन का उद्देश्य था—''श्याम सिंह शशि का सृजन-मूल्यांकन'' शीर्षक ग्रंथ का विमोचन, जो प्रख्यात कवि एवं नृविज्ञानी डॉ. श्यामसिंह शशि के व्यक्तित्व और कृतित्व का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। इसे सुविख्यात साहित्यकार डॉ. जयपाल तरंग ने संपादित किया है और 'किताबघर', दिल्ली' ने प्रकाशित किया है। विमोचन का नाम दिया गया था—**लोकार्पण**। कार्यक्रम के अध्यक्ष थे—ख्यातमाना आलोचक डॉ. नामवरसिंह। ग्रंथ का विमोचन किया प्रख्यात कवयित्री और कथाशिल्पी अमृता प्रीतम ने।

इस सारस्वत समारोह का शुभारंभ कवि, गीतकार श्री मधुर शास्त्री की सरस्वती वंदना से हुआ। इसके बाद श्रीमती अमृता प्रीतम ने ग्रंथ का विमोचन किया। तत्पश्चात् ग्रंथ के संपादक डॉ. जयपाल तरंग ने ग्रंथ का परिचय देते हुए बताया कि इस ग्रंथ में छः खंड हैं। पहले खंड में डॉ. श्यामसिंह शशि के कवि-व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम हैं। इसमें शशिजी के काव्य के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण लोगों की टिप्पणियाँ तथा उनकी प्रतिनिधि कविताएँ दी गई हैं। दूसरे खंड में शशिजी के गद्य साहित्य के विभिन्न पक्षों को लिया गया है। इसमें अन्य लोगों के विचारों के अतिरिक्त डॉ. शशि की प्रतिनिधि गद्य-रचनाएँ दी गई हैं। तीसरे खंड का शीर्षक है—'चर्चा के विविध आयाम (कुछ साहित्यकारों की दृष्टि में)' जिसमें डॉ. शशि के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अनेक विद्वानों तथा उनके समकालीन साहित्यकारों के लेख संकलित किए गए हैं। चौथे खंड का शीर्षक है—'शशि से परिचय'। इस खंड में संपादक ने शशिजी का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है तथा अनेक साहित्यकारों द्वारा डॉ. शशि से लिए गए साक्षात्कारों को संकलित किया गया है। खंड पांच में अनेक महत्वपूर्ण साहित्यकारों द्वारा डॉ. शशि को लिखे गये पत्र तथा उनके कवि-व्यक्तित्व तथा काव्य पर अनेक विद्वानों के विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

इनमें अन्य लोगों के बारे में डॉ. शशि के विचारों को भी सम्मिलित किया गया है। छठे खंड में डॉ. शशि के साहित्य संबंधी विभिन्न पक्षों तथा आयामों की जानकारी दी गई है।

श्रीमती अमृता प्रीतम ने अपने उद्‌गार का व्यात्मक भाषा शैली में प्रगट किये। उनके प्रारंभिक वाक्य इस प्रकार थे—'कहते हैं, जन्नत और जहुन्नम का मसला तब शुरू हुआ था कि जब दुनिया वालों ने देखा कि ये जो शायर लोग हैं, अदीब लोग हैं, जाने क्यों अवाम के दर्द को अपने दिल में बसा लेते हैं और फिर सारी हयाती तड़पते रहते हैं। अब वे लोग जिन्हें अवाम के दर्द के साथ कोई सरोकार नहीं था, उन्होंने कहा कि हम तो जन्नत में रहते हैं, जन्नत में रहेंगे, परंतु ये शायर और अदीब उस जहुन्नम में जायेंगे।'' कवि के मन में चिंतन की दहकती ज्वाला का उल्लेख करते हुए उन्होंने आगे कहा— ''एक बार जन्नत में इतनी सरदी पड़ी कि लोग ठिठुरने लगे। उन्होंने सुना कि जहुन्नम में आग पड़ी हुई है, इसलिए थोड़ी-सी आग जहुन्नम से मांग लेनी चाहिए। उन्होंने फरमाइश की तो जवाब मिला कि यहाँ फालतू की आग नहीं होती। यहाँ जो लोग आते हैं, वे अपनी-अपनी आग साथ लेकर जाते हैं और वह आग सब शायरों और अदीबों के दिलो-दिमाग में जलती है। उसे कोई दूसरा नहीं ताप सकता। उसे तापने के लिए तो शायर और अदीब होना पड़ता है।'' इसी सदर्भ में डॉ. शशि पर आत्मीय स्नेह-वर्षण करते हुए उन्होंने कहा—''... अपनी-अपनी आग को लिए हुए अपने एक समकालीन श्यामसिंह शशि के मन-मस्तिष्क में जलती हुई रचना की आग का इस्तकबाल करने के लिए आए हैं।'' रचनाकार डॉ. शशि के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा—''मैं सोचती हूँ, जन-जातियों में जो पहचान का रिश्ता उनका बना, उसने एक काया तैयार की और वे चिंतन की सूरत से कविता में खिल उठे। उसने काया को प्राण दिये और उसका नाम हुआ श्यामसिंह शशि।''

अमृताजी ने डॉ. श्यामसिंह शशि के काव्य-व्यक्तित्व के बारे में कहा कि अंतर की सुगंध तो उस बीज में होती है जिसे अंकुरित होने के लिए टूटना होता है। तभी आँखों के आँसू सूरज को अर्घ्य देते हैं और लाखों अक्षर एक नुक्ते पर केंद्रित हो जाते हैं, जिन्हें 'ढाई आखर' कहा जाता है। उन्होंने कहा कि डॉ. शशि के अंतर में अहंकार का बीज टूट गया। फिर जो कुछ अंकुरित हुआ वह सब रचना अंतर की सुगंधि बनी। उन्होंने कहा कि शशिजी ने कबीर-चेतना का दर्शन पाया है। उन्होंने 'मूल्यांकन' शब्द के बजाय पहचान शब्द पर बल देते हुए कहा कि शशिजी से हमारा रिश्ता पहचान का रिश्ता है, न कि मूल्यांकन का।

इस अवसर पर बोलते हुए सुविख्यात साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की कि इस लोकार्पण समारोह में कोई राजनीतिक नेता नहीं। उन्होंने कहा—''सत्य अपने आप में कुछ नहीं है, परंतु सत्य की तलाश ही सब कुछ होती है। मंजिल अपने आप में कुछ नहीं है, परंतु मंजिल तक पहुँचने की आकांक्षा ही सब कुछ होती है। कवि याद करना सिखाता है। कविता के लिए तो दर्दो-गम जमा करना होता है। वह दर्दो-गम कंप्यूटर से नहीं मिलता।'' उन्होंने कहा कि जब तक मनुष्य है, तब तक साहित्य रहेगा और कविता भी रहेगी, कंप्यूटर-क्रांति उसकी अस्मिता को कोई हानि नहीं पहुँचा सकती। उन्होंने कहा कि जब तक संवेदना है, तब तक मनुष्य भी है और कविता भी। विष्णुजी ने कहा कि डॉ. शशि मूलत: कवि और यायावर प्रकृति के हैं। और इसीलिए वह सहृदय मन लेकर सत्य और ज्ञान की प्राप्ति के लिए घूमते रहते हैं। सत्य की प्यास ही उनसे कविता लिखवाती है।

सुविख्यात पत्रकार तथा साहित्यकार श्री अक्षयकुमार जैन ने डॉ. शशि को अपने शुभकामनाएँ देते हुए कहा कि शशिजी विद्वान हैं, विवेकशील हैं, विचारवान हैं। उन्होंने आदिवासियों पर जो काम किया है वह उल्लेखनीय है। और अंतर्राष्ट्रीय बंजारों और रोमाओं का अध्ययन एक महत्वपूर्ण कार्य है। उन्होंने कहा कि डॉ. शशि एक सहृदय कवि हैं और यह तथ्य अपने आप में एक उपलब्धि है।

साहित्यकर्मी प्रो. विजयेंद्र स्नातक ने, जिन्होंने ग्रंथ की भूमिका लिखी है, कहा कि हमारे देश में स्वस्थ परंपराएँ कम हैं, जड़ परंपराएँ अधिक हैं। डॉ. शशि ने स्वस्थ परंपराओं का समर्थन किया है। उन्होंने कहा कि डॉ. शशि स्वस्थ चिंतन के अभ्यासी हैं। वह किसी विचारधारा से अथवा किसी वाद से बँधकर कविता नहीं लिखते। उन्होंने वादों से ऊपर उठकर स्वस्थ परंपराओं का अनुसरण किया है। उन्होंने किसी वाद को स्वीकार न करके केवल कवि धर्म को स्वीकार किया है। कवि धर्म के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति स्वतंत्र रहे और स्वस्थ चिंतन करे। डॉ. शशि की यायावरी वृत्ति का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि यायावरी से अनुभव बढ़ता है और वह अनुभव कविता में, लेखन में, सृजन में उतरता है। उन्होंने कहा कि छायावाद, प्रयोगवाद आदि की जो परंपराएँ हैं, उनसे हटकर लिखने की परंपरा वाले कवियों में डॉ. शशि का नाम लिया जायेगा। प्रो. स्नातक ने कहा कि इस ग्रंथ में ऐसा बहुत कुछ है जो डॉ. शशि के बारे में सोचने को विवश करता है।

प्रख्यात कवि, कथाकार तथा आलोचक डॉ. रामदरश मिश्र ने कहा कि डॉ. शशि के लिए साहित्य एक वरीयता है। वह सरकारी अधिकारियों की अपेक्षा साहित्यकारों को अधिक वरीयता प्रदान करते हैं। 'मूल्यांकन' शब्द से असहमति जताते हुए उन्होंने कहा कि डॉ. शशि का मूल्यांकन तो अभी संभव नहीं, क्योंकि वह अभी निरंतर अच्छा लिख रहे हैं। उनका मूल्यांकन तो कल होगा। अत: आज हम उनके साहित्य के मूल्यांकन के बजाए उसकी पहचान करें तो ज्यादा अच्छा होगा।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए लब्धप्रतिष्ठ आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि डॉ. शशि के सम्मान से एक नई परंपरा की नींव डाली जा रही है। उन्होंने कहा कि यह तो भारतीय परंपरा रही है कि छोटे बड़ों का सम्मान करें, किंतु इस समारोह में तो बड़ी उम्र के साहित्यकार एक कम उम्र वाले लेखक को अपना स्नेह-सम्मान देने के लिए एकत्रित हुए हैं और इस समारोह का अध्यक्ष भी समारोह में उपस्थित अनेक साहित्यकारों से आयु में छोटा है। यह एक नई बात है कि और अच्छी परंपरा भी। उन्होंने कहा—''मुझे जो बात मानसिकता के रूप में महत्वपूर्ण लगी, वह प्रतीक के रूप में उनके घर का नाम है। शशि ने अपने घर का नाम 'अनुसंधान' रखा है। वह अनुसंधान एक सृजन की वह नित्य निरंतर 'चरैवेति' करने वाली मनीषा है। मुझे आशा है कि जिस व्यक्ति में अनुसंधान की ऐसी मनीषा होगी, वह ऐसे लोकार्पणों और ऐसे स्वागत-सम्मानों से बंधा न रहेगा, जड़ न हो जायेगा, बल्कि निरंतर आगे बढ़ता रहेगा।''

इस ग्रंथ के विषय में बताते हुए डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि शायद ही हिंदी का कोई बड़ा और उल्लेखनीय साहित्यकार हो जो इस ग्रंथ में प्रकाशित न हुआ हो। यह ग्रंथ एक हिंदी कोश जैसा है। उन्होंने कहा कि जिस साहित्यकार को बच्चन जी, भवानी प्रसाद मिश्र, और वियोगी हरि जैसे साहित्यकार आशीर्वाद दें, उसमें कोई-न-कोई अच्छी बात होनी ही चाहिए। इतने साहित्यकारों का स्नेह प्राप्त करना किसी भी लेखक के लिए बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने आगे कहा कि इस ग्रंथ के प्रकाशन के बाद कुछ अन्य साहित्यकार भी समीक्षा के माध्यम से इससे जुड़ेंगे और इस तरह डॉ. शशि एक केंद्र बन जायेंगे।

अपने साहित्यकार मित्रों को धन्यवाद देते हुए डॉ. शशि ने कहा—''जब भी मैं अपने मित्रों को याद करता हूँ, वे मेरे पास आ जाते हैं और मुझे सदा उनका प्यार मिलता रहा।... इस प्यार के लिए मैं बहुत भटका हूँ। उसी भटकन की अभिव्यक्ति मेरी कलम में हुई है।

ग्रंथ के बारे में उन्होंने कहा कि यह मेरा मूल्यांकन नहीं है, बल्कि मेरे मित्रों का स्नेह है जो इस रूप में प्रकट हुआ है। मैं अपने सभी मित्रों का आभारी हूँ। अपनी रचनाशीलता के संदर्भ में उन्होंने कहा कि मैं किसी वाद से जुड़ा नहीं हूँ, शायद सबसे बड़ा वाद मेरा मानवतावाद है। उन्होंने कहा कि मेरी

रचना-यात्रा अभी जारी है। लिखना ही मेरे लिए सब कुछ है और वह मेरा वास्तविक लक्ष्य भी है। इसके बाद उन्होंने अपनी दो कविताएँ सुनाईं, जिनमें से एक कविता उनके प्रकाशनाधीन प्रबंध काव्य 'अग्नि-सागर' का अंश थी।

बाल पत्रिका 'नंदन' के संपादक तथा प्रसिद्ध लेखक श्री जयप्रकाश भारती ने डॉ. शशि के बाल-साहित्य के बारे में कहा कि डॉ. शशि ने लगभग २५ बाल पुस्तकें लिखी हैं और उनकी कुछ बाल कविताओं के कैसेट भी बने हैं। डॉ. शशि का बाल-साहित्यकार वाला रूप भी कम उल्लेखनीय नहीं है।

□

विविधा

केदारनाथ कोमल

पुस्तक में थाई रामायण—रामकियेन व वाल्मीकि रामायण व थाई रामायण में कथानक भेद रामायण प्रेमियों के लिए बढ़िया उपहार है —

'ग' खण्ड' में 'संस्कृति पर आधारित वैदेशिक संबंध' एवं 'अखण्ड भारत की संकल्पना' संकलित है।

'ड.' खण्ड में 'आत्मविश्वास की कमी', 'चलो ग्राम की ओर', 'सब से बड़ा प्रश्न—राष्ट्र का स्वरूप', 'बुढ़ापे का समाधान—हत्या या आत्महत्या', 'मानवीय मूलों की बदलती दिशाएँ' एवं चंद्रशेखर के नाटकों का अध्ययन उल्लेखनीय हैं।

'मानवीय मूल्यों की बदलती दिशाएँ' में अत्यंत प्रासंगिक प्रश्न उठाए गए हैं—'दो विश्व युद्धों ने यूरोप में सभी मानवीय मूल्यों की चिता जला दी है.... आधुनिकता के वृत्रासुर ने ही मूल्यों के हमारे समस्त रक्त को चाट लिया है। हमारे घरों में तीसरा आदमी घुस आया है और सभी संचय की उस गहरी लंबी रात के अंदर धँसते जा रहे हैं जिसका कोई आदि—अंत नहीं है। अपने ही घर का हर कोना हमारे लिए बेगाना हो गया है... आदमी कटाफटा हो गया है... औद्योगिक क्रांति ने उसकी संपूर्ण सामाजिक एवं पारिवारिक संरचना को तरह-नहस करके रख दिया है... आदमी को किसी पर भी विश्वास नहीं रहा... मूल्य ध्वस्त हुए, त्याग का स्थान भोग ने ले लिया और एक ऐसी रिक्तता पैदा हो गई है जिसमें मनुष्य मात्र मशीन का पुर्जा बनकर रह गया है... पुस्तक पठनीय है।

विविधा/कुलदीप चंद अग्निहोत्री/प्रकाशक : आत्माराम एण्ड संज, दिल्ली-६/पृष्ठ १४७.

'बेघर' का घर

पुस्तक के आमुख पर कवि की आंख कैमरे की आँख पर केंद्रित हैं। किताब छायाचित्र संबंधी नहीं वरन कविता की है—'बेघर'।

फ्लैप पर छपी पंक्तियाँ पाठक को असमंजस में डाल सकती हैं। कविता की जड़ें कहाँ हैं? कवि जानता है : 'कविता जीवन की सन्नाटे-भरी शिला झरने की तरह फूटती है। वह प्राचीन संदर्भों शिला झरने की तरह फूटती है। वह प्राचीन संदर्भों में कविता नहीं। उससे हमारे जटिल जीवन की

उन मूल-चूलों का पता चलता है—आज जो हम हो गए हैं इन कविताओं के दर्पण में 'अपने समय में, अपने मूल्यों, अपनी संस्कृति सर्वोच्च उपलब्धियों के भदेस होते... ये कविताएँ मात्र व्यंग्य नहीं वरन् फिफोड़ हैं जिसे सीधा, सपाट, व्यंजनाहीन भाषा में लिखना ही दुसाध्य है... कवि ने अपना एक अलग कौशल निर्मित किया है—विज्ञान, गणित, सेना आदि के सार्थक अनुभव के बीच वह गमगमाता कौशल क्रूर हमले करता है... सीधा वार करती हैं ये कविताएँ। बचाव-छिपाव से परे, इनमें एक अनोखा रचाव है।'

सामान्य पाठक कह सकता है कि ये कविताएँ हैं ही नहीं। प्रश्न उठता है कि यदि वैज्ञानिक सपाट बयानी में अपने अनुभवों को बताना था तो कविता में ही क्यों? गद्य में उनके अनुभव अधिक प्रभावशाली हो सकते थे। तर्क दिया जा सकता है कि आज कविता के नाम पर जो लिखा जा रहा है क्या वह 'कविता' है? जहाँ हिंदी कविता में इतने नये प्रयोग हो रहे हैं, वहाँ एक प्रयोग और सही—'अंधेरे को रोशनी के डिब्बों में/पैककर खूब बेचा जा रहा है।'

एक करेला दूसरे नीम चढ़ा। कविता में 'विज्ञान' पढ़ना/पढ़ाना और फिर अनुरोध करना कि इसे कविता माना जाये। यह बात आसानी से गले के नीचे नहीं उतरती, फिर भी विश्वमोहन जी ने, बेघर होते हुए, साहस किया है अपनी बात कहने का। हो सकता है लेखक भी इस किताब को नजर अंदाज़ कर देता यदि समीक्षार्थ न पढ़नी पडती।

कवि में आत्मस्वीकृति है—'मुझे यह ठीक-ठीक मालूम नहीं कि जो लिख रहा हूँ, वह कविता है.... जीवन के नीरस सन्नाटे में कविता एक सार्थक चीख है। पर उस सार्थक चीख को मैं पेशेवर कवियों की तरह सुसज्जित करने के पक्ष में नहीं हो पाया विशेषकर जब कि कविता को सजाने का मतलब हो दिखावे से समझौता... विज्ञान, इंजीनियरी और कविता को दो भिन्न ध्रुव नहीं मानता। दोनों मानवता से जुड़े हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। विज्ञान हमें मुख्यतः भौतिक समृद्धि देता है तो साहितय कलायें आत्मिक समृद्धि...'

कवि ने ये कविताएँ १७ वर्षों में लिखी हैं। कविताएँ कई भागों में बँटी हैं— 'समाज से खेलते हुए', 'विभिन्न', 'बासुरी की ध्वनि', 'कवि की आवाज़', 'विज्ञान की कविताएँ', 'सारी दुनिया मुस्कराती है', 'स्वीडी कविताओं का अनुवाद' आदि।

'समाज से खेलते हुए' में कवि ने अपने मन को खोला है। अंग्रेजी शब्दों की भरमार है। यहाँ तक कि शीर्षक भी जैसे 'लव आल' 'फ्रैकेस्टाइन', 'गेंग्स्ट्रर' आदि। आज की व्यवस्था पर भरपूर वार किया है—'अंधेरे को रोशनी के डिब्बों में/बंद करके बेचा जा रहा है। अंधेरा अंधेरा न रहा/रोशनी रोशनी न रही...घूस, चोरबाज़ारी, लालफीताशाही, अराजकता पर करारी चोट की गई है।

'बासुरी की ध्वनि 'में यज्ञ की भंगिमा देखने योग्य है—

सुकरात का विषपान
ईसा का शूली सोपान,
गाँधी का 'हे राम'
पशुता की बेदी पर मानवता का बलिदान (पृ. २५)

'भाषा कोठे पर 'तेज़ कविता है—'जब भाषा सज धजकर/कोठे पर बिठाई जाती है। तब भाषा से भाव-ताव/करते-करते एक संतति/बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर में/बदल जाती है...'

आकाश में उड़ने वाला कवि अपनी भाषा में कहता है—'जब तक हम, बारिश में भीगने के डर से घर बनायेंगे, तब तक हम घर में बेघर ही रहेंगे।' (पृ. ५४)

कहीं कहीं कवि की अनभूति की पकड़ ग़ज़ब ढाती है—'मैं चाहता हूं/तुम्हारे साथ/नीले आकाश में/गोता लगाना/निर्वसन/किंतु बीच में/कुछ न कुछ/आ ही जाता है/शब्द/स्पर्श/रूप/
रस/गंध'। (पृ. ६१)
स्वीडीश/कविताओं का अनुवाद सुंदर बन पड़ा है। नमूने के लिए गुनार एकल्यौफ की कविता की झलक देखिये—'मैं तुम्हें दूर देश से लिख रहा हूं/यहाँ कोई रंग नहीं है/यहाँ तुम्हारे लिए कोई चित्र नहीं है/यहाँ तुम्हारे लिए कोई विचार भी नहीं है/यह दूर देश है!
(पृ. ६७)
अंत में एक चीनी कविता—समय का अनुवाद—

बरसों पर बरस
परतों की तरह
तेज़ी से पड़ते जाते हैं
शरद की यह उषा बेला
शांत कोमल और निश्चल
कमल पर बैठी हुई है!

कहना चाहिए कि विश्वमोहन तिवारी नें अपने अंदाज़ से हिंदी कविता जगत में कदम रखा है—परंपरागत कविता के प्रति पूरे सम्मान के साथ कहा जा सकता है कि आने वाली हिंदी कविता में विज्ञान का प्रवेश निश्चित होगा।

□

प्रश्नों से घिरी 'सहमी हुई शताब्दी'

डॉ. शशि सहगल

'विमर्श' द्वारा नई दिल्ली में आयोजित एक गोष्ठी में ललित शुक्ल की नई कविता पुस्तक 'सहमी हुई शताब्दी' पर विचार विमर्श किया गया। राजीव सक्सेना ने शुरूआत करते हुए संकलन की अनेक कविताओं के माध्यम से कहा कि परस्पर विरोधी बिंबों की संरचना ललित शुक्ल की कविताओं की एक विशिष्टता है और इसी तरह से हम उनकी कविताओं की अंत:प्रकृति को पहचान सकते हैं। डॉ. देवेंद्र आर्य का आग्रह कविताओं के वस्तुगत विश्लेषण में था और उन्होंने कहा कि इन्हें अपने परिवेश की विशिष्टताओं से जोड़ कर ही परखा जाना चाहिये। जबकि गोविंद उपाध्याय का मानना था कि इस संग्रह की कविताएँ गर्जन-तर्जन अधिक करती हैं, लेकिन उन्होंने 'अकेले नहीं हो मेरे लाल' जैसी कविताओं को रेखांकित करते हुए कहा कि इस तरह की कविताएँ अधिक हैं। डॉ. सुलेख चंद्र शर्मा का मत था कि इस संग्रह की कविताएँ खरी कविताएँ हैं। समकालीन परिवेश, भाषा, मर्यादा, संस्कार और संस्कृति से जूझती हुई ये कविताएँ हमें विचलित करती हैं। डॉ. विमल ने इन कविताओं के संबंध में एक मूल प्रश्न उठाते हुए कहा कि क्या एक प्राध्यापक आलोचक की कविताओं की भाषा में और दूसरे कवियों की भाषा में कोई बुनियादी फर्क आ जाता है? इन कविताओं के बीच से जो गुस्सैल चेहरा झाँकता नजर आता है, वह हमें सिर्फ एक क्लेश की ओर ले जाता है। ललित शुक्ल में हस्तक्षेप की क्षमता तो है लेकिन वह कविताओं में बिखरा होने के कारण बहुत असरदार नहीं लगता। ललित शुक्ल ही क्यों, जितने भी प्राध्यापक आलोचक कविताएँ लिख रहे हैं उन्हें इस प्रश्न पर गौर करने की जरूरत है।चंचल चौहान का मानना था कि इस संकलन की कविताएँ अलग-अलग मूड की कविताएँ हैं लेकिन इन सबकी मूल अंतधारा आतंक है। वृहत्तर मानवीय संदर्भों के प्रति ललित शुक्ल की ईमानदारी इन कविताओं में झलकती है।'

डॉ. रणजीत साहा ने तो एक कविता के माध्यम से ही इस संकलन की तेज आलोचना की। उनका मानना था कि इन कविताओं का भावबोध और भाषा कृत्रिम है और ललित शुक्ल एक कवि की अपेक्षाओं को पूरा नहीं करते जबकि डॉ. माहेश्वर ने कहा कि 'अंतर्गत' से 'सहमी हुई शताब्दी', तक ललित शुक्ल की कविता यात्रा निरंतर विकास की यात्रा है। नरेंद्र मोहन का मत था कि विचार को संवेदन में बदलने की क्षमता इन कविताओं में है तो जगदीश चतुर्वेदी ने कहा कि कोई भी अच्छी कविता

राजनैतिक प्रतिबद्धता की मोहताज नहीं होती, ये कविताएँ तीखे दंश का अहसास कराते हुए आगे बढ़ती तो हैं लेकिन जल्दी ही उनमें बिखराव नजर आने लगता है। ललित शुक्ल से उन्हें अपेक्षाकृत सशक्त कविताओं की आशा थी। रामदरश मिश्र को ये कविताएँ आत्मीय लगीं और इनका मूल स्वर पीड़ा और भय का लगा। यही हमारी इस शताब्दी की त्रासदी है जिसे कवि ने अभिव्यक्त किया है। अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए डॉ. श्यामसिंह शशि ने कहा कि कविता किसी की डिक्टेशन नहीं हो सकती और ललित शुक्ल की कविताओं के प्रति उन्होंने अपना आश्वस्ति भाव प्रकट किया। गोष्ठी में कविता से संबंधित जो प्रश्न विमल ने उठाये थे उन पर बाद में अधिक चर्चा नहीं हुई जबकि ऐसे प्रश्नों के बहाने कविता के समकालीन स्वरूप पर और विस्तार से बात हो सकती थी। गोष्ठी का संयोजन संचालन रमेश मिश्र ने किया और इसमें डॉ. रामनिवास शर्मा, दर्शन लाल सेठी, ओमप्रकाश शर्मा तथा कुसुम श्रीवास्तव ने भी भाग लिया।

['सहमी हुई शताब्दी—कविता संग्रह : ललित शुक्ल]

नए मनुष्य की खोज में तत्पर कहानियाँ

'गवाक्ष' के मंच से श्रवण कुमार की कहानियों पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया। अपने संयोजकीय वक्तव्य में प्रताप सहगल ने कहा कि श्रवण कुमार का पूरा कथा-संसार नए सिरे से मूल्यांकन की मांग करता है। इसी मूल्यांकन की प्रक्रिया की शुरूआत में डॉ. ललित शुक्ल ने अपने आलेख में कहा कि श्रवण कुमार की कहानियाँ नए मनुष्य की खोज में तत्पर हैं और यह अपनी अस्मिता की बुनावट एवं व्यक्तित्व के रचाव के अलगाव के कारण अलग नजर आती हैं। इन कहानियों के चरित्र पाठक को विचलित करते हैं।

माहेश्वर ने अपने आलेख मे कहा कि पूंजीवाद द्वारा जर्जरित समाज के चित्र को ये कहानियाँ पैनी धार तरीके से सामने लाती है। कहानी आंदोलनों की भूमिका को रेखांकित करते हुए डॉ. माहेश्वर ने कहा कि समर्थ रचनाकार इनके बावजूद समय-सत्य को स्पष्ट करने की कोशिश करता है। श्रवण कुमार की कहानियाँ निरूपायता को स्वाभाविक और ट्रैजिक ढंग से सामने लाती है। बिना बिल्ले के समाज को समझने की कोशिश करने वाली ये कहानियाँ कहीं भी चीखती नहीं हैं।

सुरेंद्र तिवारी के आलेख के अनुसार श्रवण कुमार का कहानीकार सच्चाई का पक्षधर तो है, यथार्थ का यथार्थ चित्रण भी है। कथारस की भी वहाँ कमी नहीं। भावुकता से दूर, निसंगता की टोन लिए हुए ये कहानियाँ पाठक को बाँधती भी हैं। जीवन की जटिलताओं को ताकती यह कहानियाँ सैक्स के आकर्षण स भी दूर हैं और एक वैचारिक टकराहट ध्वनित होती है, लेकिन प्रश्न यह है कि यह सब होने के बावजूद श्रवण कुमार की एक विशिष्ट पहचान अभी भी क्यों नहीं बन सकी!

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने कहा कि सन् ६० के बाद की कहानियों में जिस तरह से जानबूझ कर एक भ्रम खड़ा करने की कोशिश हई है, उससे यह कहानियाँ बची हैं। श्रवण कुमार का अनुभव-संसार ठास है और अपने कथ्य को साधारण भाषा में कहने का साहस उनमें है। इन कहानियों में न तो अमूर्तन है। और न ही यह तेजाबी भाषा की शिकार हैं। इनमें अनुभवों के साथ रचनात्मक छल भी नहीं है और समय के प्रचलित अस्तित्ववादी दर्शन से तो यह कोसों दूर हैं।

डॉ. नरेंद्र मोहन का मत था यह मोहभंग की प्रक्रिया से निकली सीधी सच्ची कहानियाँ हैं, लेकिन क्या अनुभव के प्रति सीधा-सच्चा होना ही रचना के लिए काफी है। इनमें वास्तविकता के साथ

लेखकीय चेतना की टकराहट नजर नहीं आती और प्राय: कहानीकार 'यथास्थिति' का समर्थक हो जाता है। जीवन-संदर्भों से टकराहट के साथ-साथ दृष्टि का होना भी जरूरी है। कहानियों का कथ्य 'अतिपरिचित' है और यह अतिपरिचित ही कहीं कहानी के लिए घातक तो नहीं है?

रमेश ऋषिकल्प का कहना था कि पूरी व्यवस्था को अभिव्यक्ति देने के बावजूद ये कहानियाँ संवेदना को कहीं प्रभावित नहीं करतीं। सार्थक कहानी बनाम सफल कहानी का सवाल उठाते हुए उन्होंने कहा कि ये कहानियाँ सफलता के दायरे के अधिक करीब लगती हैं।

डॉ. पुष्पपाल सिंह ने कहा कि किसी भी रचनाकार के मूल्यांकन का आधार उसकी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ होनी चाहिए। श्रवण कुमार की कहानियाँ जैसे 'जहर', 'मामूली लोग' और 'नहीं यह कोई कहानी नहीं' उनके कहानीकार के मूल्यांकन का आधार हो सकती हैं। श्रवण की कहानियों के दो धरातल साफ हैं। पहला मध्य वर्ग की विपन्नता और तंगदस्ती और दूसरा विभाजन की त्रासदी। मध्य वर्ग की वैचारिक और आर्थिक विपन्नता से उपजे विरोधाभासों का अंकन केवल श्रवण कुमार ने ही किया है और 'मामूली लोग' जैसी कहानियों से इनके मूल्यांकन की शुरूआत कर सकते हैं।

जगदीश चतुर्वेदी का कहना था कि यह सत्य नहीं है कि समांतर कहानी या ऐसे ही दूसरे आंदोलनों ने श्रवण कुमार का इस्तेमाल किया। सशक्त हस्ताक्षर आंदोलनों से दबते नहीं, सामने आते हैं। यह कहानियाँ भोगे हुए अंतरंग अनुभवों की कहानियाँ तो हैं, लेकिन इन कहानियों में आयी सहजता सपाट है। ऐसा भी लगता है कि लेखक के उतावलेपन के कारण कई कहानियाँ बीच में ही टूट गयी हैं। पठनीयता इन कहानियों का गुण है, लेकिन यह संवेदना की ऊपरी सतहों को ही छूती हुई निकल जाती है। 'खंडहर' या ऐसी दूसरी कहानियों को नजर में रखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि सैक्स का आब्सैशन कहीं कहानीकार में मौजूद है। कहीं-कहीं शैली में जैनेंद्र कुमार का प्रभाव भी इन कहानियों में झलकता है।

इसके बावजूद स्वयं कहानीकार **श्रवण कुमार ने अपना वक्तव्य देते हुए कहा कि उनका एक प्रमुख कहानीकार के रूप में उभर न सकने के पीछे प्रचारतंत्र की नकारात्मक और उपेक्षा की भूमिका है। आंदोलनों की राजनीति भी एक कारण हो सकता है, लेकिन वे अपनी रचनाओं से आश्वस्त हैं और आश्वस्त हो कर ही लिखते रहना चाहते हैं।**

अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. रणवीर रांग्रा ने कहा कि श्रवण कुमार को आत्म साक्षात्कार की जरूरत आज पहले से ज्यादा है। प्रचारतंत्र किसी भी रचनाकार को लंबे समय तक प्रतिष्ठित नहीं कर सकता और आश्वस्ति भाव भी लेखक के लिए एक खतरा है। उन्होंने कहा कि क्रांति क्या कोई पागल ही कर सकता, जैसा कि 'विरोध' जैसी कहानियों से उभरता है। रचनाकार की सक्षमता की कसौटी समीक्षकों या तंत्र द्वारा नोटिस लेना या न लेना नहीं, बल्कि कसौटी यह है कि रचना पाठक के साथ कब तक रहती है। कहानी केवल समीक्षा के लिए ही न पढ़ी जाए और लंबे समय तक पाठक के साथ रहे। निम्न मध्यवर्ग के असंतोष का कारण मात्र आर्थिक ही नहीं, और भी कारण हैं, जिन पर कहानीकार की नजर नहीं गयी है और लगता है कि वह सरकारी नौकरी की तरह से कहानी में भी 'प्ले सेफ' कर रहा है।

[श्रवण कुमार की कहानियाँ]

□

रपट

भारत के उपराष्ट्रपति सूरीनाम में

भारत-मूल की आबादी वाले सुदूर कैरेबियन देशों की अपनी यात्रा के अंतिम चरण में, त्रिनिदाद और गयाना होते हुए भारत के उप-राष्ट्रपति महामान्य डा. शंकरदयाल शर्मा एक बड़े शिष्टमंडल के साथ रात ९ मई, १९८८ को सूरीनाम पहुँचे। भारत जैसे तीसरी दुनिया के सशक्त प्रवक्ता-देश के इतने मान्य नेता और एक उच्च-स्तरीय शिष्टमंडल का सूरीनाम की जनता और नवगठित प्रजातंत्री सरकार के लिए आगमन सुखद आश्चर्य और सम्मान की बात थी।

पूर्व में डच-गयाना के नाम से जाना जाने वाला वर्तमान सूरीनाम नवंबर, १९७५ में एक स्वतंत्र देश बना किंतु तब प्रजातंत्री सरकार पाँच वर्ष से भी कम समय तक ही काम कर पाई और १९८० में सत्ता सैनिक शासन के अंतर्गत चली गई। सैनिक शासन के लंबे सात वर्षों में देश की आर्थिक स्थिति निम्नतम बिंदु तक पहुँच गई क्योंकि पूर्व डच-शासकों ने सूरीनाम के सैनिक प्रशासन को आर्थिक सहायता देना रोक दिया। अंततः सूरीनाम के सैनिक प्रशासन और प्रजातंत्री राजनीतिक दलों के बीच एक समझौता हुआ जिसके अंतर्गत आम चुनाव कराए गए और तीन बड़े राजनीतिक दल, जो क्रमशः हिंदुस्तानी, क्रियोल और जावनीज आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं, के संयुक्त मोर्चे की सरकार ने सत्ता संभाली।

सूरीनाम में भारतीय दूतावास की स्थापना दस वर्ष पूर्व हुई और यह सामान्य राजनयिक कार्यों के अतिरिक्त इस देश की लगभग ४० प्रतिशत भारतवंशी आबादी की सांस्कृतिक, भाषाई और धार्मिक जिज्ञासाओं की संतुष्टि भी करता रहा है। वर्तमान राजदूत महामहिम श्री बच्चू प्रसाद सिंह के कार्यभार संभालने के बाद दोनों देशों के बीच विभिन्न स्तरों पर संबंध दिनानुदिन मजबूत होते गए। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सूरीनाम का एक अत्यंत उच्चस्तरीय शिष्टमंडल गुट-निरपेक्ष देशों के नई दिल्ली शिखर सम्मेलन में शामिल हुआ और उसी सम्मेलन में सूरीनाम को उपाध्यक्ष भी चुना गया। भारत के प्रति यहाँ की जनता और सरकार की सद्भावना उस समय सभी के मन को छू गई जब स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी की अंत्येष्टि की जो फिल्म बनाई गई वह कई हफ्ते तक सार्वजनिक स्थानों पर निरंतर चलने वाले टी.वी. के माध्यम से लगातार दिखाई जाती रही और हजारों लोग उसे देखते रहे।

गत वर्ष के आम चुनाव में लोकतंत्री दलों की विजय के बाद भारत से पहली बार एक मंत्री-स्तरीय शिष्टमंडल श्रीमती रामदुलारी सिन्हा के नेतृत्व में गत जनवरी के अंत में वर्तमान राष्ट्रपति श्री **रामसेवक शंकर** और उप-राष्ट्रपति श्री **हेन्क आरोन** के पद-ग्रहण समारोह में शामिल हुआ और

इससे सभी को यह लगा कि दुनिया में जहाँ भी प्रजातंत्र का उन्मेष होगा भारत सदा उसका खुलमन से स्वागत व समर्थन करेगा। इस माह भारत के उप-राष्ट्रपति की सूरीनाम की सद्भावना यात्रा इसी समर्थन और सहयोग की पुष्टि थी।

भारत के उपराष्ट्रपति सूरीनाम आ रहे हैं – इस समाचार ने यहां की भारत-मूल की जनता को स्वभावत: आह्लादित कर दिया जो इस देश में अपने आगमन के पिछले डेढ़ सौ वर्षों में सिर्फ भारत का नाम जपते रहे हैं, सपना देखते रहे हैं और दादी-नानी की कहानियों में भारत को परी-देश जैसा मानते आए हैं। लेकिन यह उद्वेलन सिर्फ भारतवंशियों तक सीमित नहीं था। सरल और सीधे-सच्चे, क्रियोल, जावानीज और दूसरे लोग भी भारत को संघर्षशील, मेहनती और दुनिया की गरीब जनता की बात निडरता से बोलनेवाला एक ऐसा देश मानते हैं जो अपने विशाल आकार, विशाल आबादी और बड़ी-बड़ी समस्याओं से जूझते हुए भी तेजी से आगे आ रहा है जिसमें विश्व राजनीति का छल प्रपंच नहीं है, औपनिवेशिक आकांक्षाएं, विस्तारवाद की इच्छा नहीं है और जिस पर सहज ही विश्वास किया जा सकता है।

काफी पहले से यहाँ के कई रेडियो स्टेशनों ने (सूरीनाम में आठ-दस रेडियो निजी क्षेत्र में हैं और वे बराबर हिंदी में ही कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं) महामान्य डा. शंकरदयाल शर्मा के स्वागत में उनका परिचय, स्वागत-स्थलों की जानकारी और भारत के बारे में प्रसारण आरंभ कर दिए। समाचार पत्रों ने भी लगातार भारत की औद्योगिक प्रगति और आने वाले विशिष्ट अतिथि का परिचय प्रकाशित किया। सूरीनाम दूरदर्शन भी कई दिनों तक अपने विशेष प्रसारण प्रदर्शित करता रहा।

नौ मई को जब भारत के उप-राष्ट्रपति सूरीनाम के सांद्रे हवाई अड्डे पर एक विशेष विमान से उतरे तो स्वागतार्थियों की निश्छल भीड़ सीधे विमान-तल पर विमान की सीढ़ियों तक जा पहुँची। सुरक्षाकर्मी अपने-अपने कार्य में बहुत ही सावधान थे पर थोड़ी-सी आबादी वाले इस देश में जहाँ लगभग हर चेहरा परिचित हो ही जाता है, सुरक्षा की समस्या आड़े नहीं आती। विशिष्ट अतिथियों के स्वागत-लाउंज के प्रवेश मार्ग के दोनों ओर सैकड़ों बच्चे और महिलाएं अपने परंपरागत परिधानों में उपराष्ट्रपति को पुष्प-गुच्छ और फूल-मालाएं भेंट कर रहे थे– इनमें सूरीनाम के प्राचीन अमरेंडियन निवासियों, क्रियोल, भारतीय, जावानीज आदि सभी का प्रतिनिधित्व था।

सूरीनाम के उपराष्ट्रपति श्री हेन्क आरोन, नेशनल असेंबली के अध्यक्ष श्री जगरनाथ लक्षमन, जावानीज नेता श्री विल्ली सोमिता, मंत्रि परिषद और असेंबली के सदस्य, विशिष्ट नागरिक और जनता ने भारत से आए विशिष्ट अतिथि का भावभीन-स्वागत किया। सांद्रे हवाई अड्डे से राजधानी तक इंदिरा गांधी राजमार्ग की यात्रा में पड़ने वाले पारा और दनिका जिलों में बड़े-बड़े स्वागत द्वार बनाए गए थे और हिंदू मंदिरों के निकट स्वागत का विशाल आयोजन किया था। उपराष्ट्रपति ने स्थान-स्थान पर एक-एक कर जनता का स्वागत-अभिवादन स्वीकार किया और उन्हें भारत की शुभकामनाएँ दीं।

कार्यक्रम के अनुसार उसी दिन उपराष्ट्रपति के शिष्टमंडल के साथ आए हुए भारतीय कलाकारों के दल ने, स्थानीय नेशनल इंडोर स्टेडियम में हजारों की तादाद में उपस्थित जनता के समक्ष भोजपुरी गीतों और कत्थक नृत्य का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस आयोजन का उद्देश्य ही था कि उत्सुक जनता भारत के उपराष्ट्रपति को देखने की अपनी जिज्ञासा पूरी कर सके और उनका सार्वजनिक स्वागत कर सके। सूरीनाम के शिक्षा मंत्री ने अपने स्वागत भाषण में भारत की महान सभ्यता, विशाल सांस्कृतिक परंपरा और वर्तमान नेतृत्व की सराहना करते हुए कहा कि भारत का प्रजातंत्र, आधुनिक औद्योगिक विकास और स्वावलंबन हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।

सांस्कृतिक कार्यक्रम में सूरीनाम की जनता के अतिरिक्त सूरीनाम के राष्ट्रपति महामान्य रामसेवक शंकर, तथा उपराष्ट्रपति श्री हेन्क आरोन तथा नेशनल असेंबली के अध्यक्ष श्री जगरनाथ लक्षमन के अलावा मंत्रिमंडल और नेशनल असेंबली के सदस्य उच्चाधिकारी, राजनयिक आदि सभी सपरिवार उपस्थित थे। उनकी संस्थाओं के नेताओं और गण्यमान्य नागरिकों ने उपराष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा का अभिवादन किया। लोगों को भोजपुरी भाषा के लोकगीत बेहद पसंद आए। बहुत दिनों बाद उन्होंने अपनी भाषा के इतने मार्मिक, मौलिक और स्तरीय कार्यक्रम का आस्वादन किया।

दूसरे दिन उपराष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने शिष्टमंडल के साथ आए भारतीय संसद-सदस्यों के साथ सूरीनाम के राष्ट्रपति पैलेस में राष्ट्रपति श्री रामसेवक शंकर एवं उपराष्ट्रपति श्री हेंक आरोन से औपचारिक भेंट की और उन्हें उपहार आदि भेंट किए।

इसके बाद सूरीनाम की राष्ट्रीय असेंबली के एक विशेष अधिवेशन को भारत के उपराष्ट्रपति ने संबोधित किया। असेंबली के अध्यक्ष, हिंदुस्तानी पार्टी के नेता और वर्तमान प्रजातांत्रिक परिवर्तन के प्रमुखतम सूत्रधार श्री जगरनाथ लक्षमन ने भारत के उपराष्ट्रपति का भावभीना स्वागत किया। डॉ. शर्मा ने कहा कि उन्हें संसद-सदस्यों के बीच आकर अत्यंत प्रसन्नता हुई है। डॉ. शर्मा ने अपने भाषण में प्रजातंत्री परंपराओं, गुट-निरपेक्षता की नीति और विश्व शांति की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि भारत किसी भी देश पर अपने विचार लादना नहीं चाहता और विकासशील देशों के साथ अपने अनुभव बाँटने और सहयोग करने के लिए सदा तत्पर है।

राष्ट्रीय असेंबली, प्रीतिभोज और सूरीनाम के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा अन्य नेताओं के साथ अपनी बातचीत में डॉ. शर्मा ने कहा कि आर्थिक क्षेत्रों में विकास के लिए भारत अपने अनुभव और विशेषज्ञता सूरीनाम के साथ बाँटने को तैयार है, विशेषकर कृषि और लघु उद्योगों की स्थापना में दोनों देश लाभदायक सहयोग कर सकते हैं। सूरीनाम के राष्ट्रपति ने भी इन क्षेत्रों में सहयोग के लिए अपनी इच्छा व्यक्त की। असेंबली के अध्यक्ष श्री जगरनाथ लक्षमन ने अपना स्वागत भाषण हिंदी में आरंभ किया जिसका सदस्यों ने स्वागत किया। श्री लक्षमन ने भारत के उपराष्ट्रपति को इस अवसर पर एक घड़ी भेंट की और डॉ. शर्मा ने असेंबली अध्यक्ष को भारतीय संसद की एक प्रतिकृति उपहार में भेंट की।

दोनों देशों के नेताओं ने गुट-निरपेक्षता, निरस्त्रीकरण और रंगभेद की समस्याओं और विकासशील देशों के बीच सहयोग पर भी विचारों का आदान-प्रदान किया।

सूरीनाम की महिलाओं की एक सभा में भारत के उपराष्ट्रपति की धर्मपत्नी श्रीमती विमला शर्मा का स्वागत किया गया और सूरीनाम की गृह मंत्री श्रीमती अलक्जेंडर ने सूरीनाम की महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डाला। श्रीमती शर्मा ने समाज कल्याण मंत्री श्री विली सोमिता से भी भेंट की और जन-कल्याण की योजनाओं में अपनी रुचि दिखाई।

सूरीनाम के राष्ट्रपति ने तीसरे दिन उपराष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा के साथ सूरीनाम नदी पर अपने विशेष जलपोत पर नौका-विहार का कार्यक्रम आयोजित किया और देश के प्रशासन में अपनी सहयोगी पार्टियों के अध्यक्षों सहित देर तक भारत के उपराष्ट्रपति के साथ रहे। सूरीनाम के उपराष्ट्रपति श्री हेन्क आरोन, असेंबली अध्यक्ष श्री जगरनाथ लक्षमन, जावानीज नेता श्री विली सोमिता शिष्टमंडल के सभी संसद-सदस्य और भारत के राजदूत श्री बच्चू प्रसाद सिंह की उपस्थिति में दोनों देशों के नेताओं ने विचारों का उपयोगी आदान-प्रदान किया। भारतीय शिष्टमंडल के साथ आये अधिकारी एवं विशेषज्ञों तथा सूरीनाम के अधिकारियों की एक उपयोगी बैठक भी इस यात्रा की उपलब्धि थी।

विकास के विभिन्न क्षेत्रों में भारत अपने अनुभवों को विकासशील देशों के साथ बाँटने और

उनकी सहायता के लिए हमेशा तैयार रहा है। भारतीय अधिकारियों ने विश्वास दिलाया कि जिन क्षेत्रों में भी सूरीनाम भारत के अनुभवों से लाभ उठाना चाहता है और मार्गदर्शन चाहता है, भारत उस पर सहयोग की भावना से विचार करेगा और सहायता देगा। भारतीय अधिकारियों ने कहा कि इसी उद्देश्य से भारत विकासशील देशों के लिए अनेक छात्रवृत्तियां प्रतिवर्ष देता है ताकि नवयुवक नए अनुभव प्राप्त करें और अपने देश में जा कर सेवा करें। सूरीनाम ने अभी तक इस सुविधा का बहुत कम लाभ उठाया है। सूरीनाम के अधिकारियों ने कृषि, लघु उद्योग और मत्स्यपालन के क्षेत्रों में भारतीय अनुभव व मार्ग-निर्देशन के प्रति उत्सुकता दिखाई। सूरीनाम के राष्ट्रपति स्वयं एक जाने-माने कृषि विशेषज्ञ हैं और आशा है कि निकट भविष्य में इन क्षेत्रों में दोनों देशों के बीच सहयोग बढ़ेगा।

तीसरे दिन शाम को भारत के राजदूत ने उपराष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा के सम्मान में एक स्वागत समारोह का आयोजन किया था जहाँ दोनों देशो की ध्वजा, दोनों के राष्ट्रगीत तथा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद सदस्य, अधिकारी, जन-प्रतिनिधि, विद्वान, प्राध्यापक, पत्रकार, पंडित, पुजारी, मौलवी और पादरी, महिलाएँ तथा धार्मिक सास्कृतिक संस्थाओं के प्रतिनिधि बड़ी संख्या में पधारे और राजदूत ने उन सभी का परिचय उप-राष्ट्रपति जी से कराया और वे सभी भाव विभोर थे डॉ. शर्मा का स्नेह सान्निध्य पाकर। भारतीय व्यंजन और पेय के साथ-साथ पुरखों के देश का इतना बडा नेता, इतने संसद सदस्य, अधिकारी और पत्रकारों का दल सभी को अपने बीच पाकर वे ऐसा महसूस कर रहे थे जैसे उनका प्यारा सपना सच होकर सूरीनाम की धरती पर उतर आया है। वे प्रसन्न थे यह सुनकर कि भारतीय दूरदर्शन उनकी छवि तत्काल भारत भेज रहा है और समारोहों के विवरण आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हो रहे हैं और पत्रकार निरंतर समाचार तथा फोटो संप्रेषित कर रहे हैं। यह यात्रा कई प्रकार से अभूतपूर्व थी चूँकि एक सदी बीत गयी किंतु कब आया था ऐसा उच्चस्तरीय शिष्टमंडल पुरखों के देश से।अनेक लोगों ने कहा भी कि आज हम गौरवान्वित हैं यह देखकर कि भारत से वह विमान भी हमारी धरती पर उतरा बोइंग ७४७ जेट विमान हर्षवर्द्धन जिस पर लहराता है भारत का प्यारा तिरंगा। मुझे सुनकर यह लगा कि एयर इंडिया ने कुछ सोचकर ही इस विमान का यह नामकरण किया था और व्यस्तता के बीच प्रफुल्लित थे श्री अरुण मित्र (प्रबंधक एयर इंडिया) यह जानकर कि इस घोर यांत्रिक युग में भी भावनाओं का स्रोत सभी जगह नहीं सूखा है।

और अब आ गई वह बेला जब भारत के उपराष्ट्रपति सूरीनाम से बिदा हुए। फिर एक बार बरसते पानी की परवाह न करते हुए सैकड़ों लोग हवाई अड्डे पर मौजूद थे। वायुयान की सीढ़ियों पर चढ़ने से पूर्व विदा लेते हुए जब उपराष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने राष्ट्रीय असेंबली के अध्यक्ष श्री जगरनाथ लक्षमन और उपराष्ट्रपति श्री हेन्क आरोन को स्नेहपूर्वक हृदय से लगा लिया तो लगा कि दोनों देशों के बीच दोस्ती और भाईचारे के एक नए युग की शुरूआत हो गई है।

इसे एक संयोग ही माना जाए कि पहली बार भारत के प्रतिष्ठित पत्रकारों का इतना बड़ा दल सूरीनाम की धरती पर उतरा था उपराष्ट्रपति के साथ। उनका कहना था कि यह उनके लिए एक सुखद आश्चर्य का विषय था कि केरेबियन देशों के बीच यही एक हिंदी-भाषी देश मौजूद है। तीन देशों की अपनी यात्रा के अंत में ही उन्हें आम बोलचाल के रूप में हिंदी सुनने को मिली। यहाँ के लोगों के भारत प्रेम, धार्मिक आस्था, भारतीय परंपरा का सम्यक निर्वाह, जातीय बंधनों को महत्व न देते हुए पारस्परिक प्रेम और स्नेह संबंध परिवार में नारी का सम्मान आदि के बारे में भारतीय पत्रकारों ने सराहनीय टिप्पणियां व्यक्त कीं। अत्यंत व्यस्तता के बीच भी पत्रकारों ने यह अनुभव किया कि भारतीय राजदूत श्री बच्चू प्रसाद सिंह ने अपनी निष्पक्षता, स्पष्टवादिता, कर्मठता और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण के कारण न केवल सूरीनाम के सभी नेताओं, प्रशासकों का गहरा विश्वास प्राप्त किया है वरन् जनता के बीच भी एक विशेष स्थान बना लिया है। □

पत्र-पत्रांश

मेरे सामने सन् १९८७ के वर्ष का चौथा और वर्ष १९८८ का पहला अंक है। १९८७ का चौथा अंक तो महादेवी वर्मा की स्मृति को समर्पित है। उसमें संपादकीय महादेवी वर्मा के काव्य पर एक ऐसा दस्तावेज़ है, जिसे बार-बार पढ़ने को जी चाहता है। महादेवी वर्मा की कविता मन-प्राणों को झकझोर देती है। अमृतराय, नगेंद्र, अंचल, प्रभाकर माचवे प्रभृति की रचनाओं ने इस अंक को सुपाठ्य तथा संग्रहणीय बना दिया है। अन्य रचनाएँ भी पठनीय हैं।

सन् १९८८ का पहला अंक तो विभिन्न रचनाओं का एक सुगंधित गुलदस्ता है। उसमें नाना प्रकार के पुष्पों की बहार है। उसमें लेखों के साथ-साथ सुंदर कविताओं का बढ़िया संग्रह है। डॉ. पाण्डुरंग राव, डॉ. रणवीर रांग्रा, विष्णु प्रभाकर, डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय के लेख सुचिंतित हैं। कविताएँ तो प्राय: सभी रूचिकर हैं। अंत में सूरीनाम से संबंधित जो सामग्री आपने दी है, उसने मेरी सोलह वर्ष पूर्व की उन मधुर स्मृतियों को सजीव कर दिया, जिन्होंने वहाँ के प्रवास में मुझे अपरिचित आनंद प्रदान किया था और जिन्हें मैं कभी भूल नहीं सकूंगा। आपके परिश्रम तथा सूझबूझ के लिए हार्दिक बधाई, साधुवाद।

यशपाल जैन मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल एन-७७ कनाट सर्कस नई दिल्ली

'गगनांचल' के नये अंक (वर्ष ११, अंक १, १९८८) में भवानी प्रसाद मिश्र जी के संबंध में दो लेख प्रकाशित कर आपने बहुत अच्छा कार्य किया। परंतु जिस कार्य के लिए आपको बधाई देने को मन आतुर है वह है कविताओं का भरपूर गुलदस्ता। गगनांचल में कविताएँ तो छपती रहती हैं पर इस बार कुछ ऐसा लगा कि कविताएँ हमारे जीवन को क्या कुछ प्रदान करती हैं। इस श्रेष्ठ अंक के लिए आपको बधाई।

बाबूराम वर्मा ६७, बल्लूपुर, देहरादून (उ.प्र.)

'गगनांचल' का महादेवी अंक मिला जिसमें मेरा लेख आया है। तुम्हारा हर अंक ही अपनी एक विशेषता रखता है यही बात इस अंक में भी है। महादेवी वाला संपादकीय खूब अच्छा है। दूसरे अंक में भवानी भाई पर गोपाल प्रसाद व्यास और रणबीर रांग्रा दोनों ही ने बड़े प्यार और बड़े अपनेपन से लिखा है। भवानी भाई का व्यक्तित्व भी तो इसी के अनुकूल था, ऐसा प्यार 'एवोक' करने वाला। सचमुच वो बहुत ही अच्छे आदमी थे और उतने ही अच्छे कवि।

अमृतराय, १८ न्याय मार्ग, इलाहाबाद (उ.प्र.)

महादेवी वर्मा पर केंद्रित 'गगनांचल' का नया अंक मिला। धन्यवाद। इसमें से महादेवी जी के पुनर्मूल्यांकन की जो ज़ोरदार ध्वनि निकलती है वह सर्वथा उचित और न्याय संगत है। विद्रोहिनी नारी समाज के लिए सदा असह्य रही है, आज भी है। इसीलिए महादेवी के साथ निरंतर ज़्यादतियाँ होती रहीं, जीवन में भी और साहित्य में भी।

मैं आपके संपादकीय से पूरी तरह सहमत हूँ कि उनका काव्य जिस गहरी वेदना में डूबा हुआ है वह उनके अदम्य व्यक्तित्व के पुरुष-प्रधान समाज से सीधे टकराव से उपजी थी, पारिवारिक जीवन के त्याग की उनकी भीष्म प्रतिज्ञा और परिवार की जीवनव्यापी तृष्णा के बज्ञ चलते रहने वाले'संघर्ष से निकली थी। उसे ओढ़ी हुई या पाली हुई वेदना की संज्ञा देना समूचे नारी मुक्ति-संघर्ष को गाली देने के बराबर होगा। इस दिशा में अमृतराय जी ने अपने लेख में जो दुर्लभ और नितांत अंतरंग प्रसंग छुए हैं उनके लिए हिंदी-जगत उनका आभारी है। छनका विश्लेषण भी सटीक एवं मार्मिक है। इस विषय पर अन्य लेख भी ज्ञानवर्धक हैं।

कुल मिलाकर यह अंक महादेवी वर्मा की काव्य-साधना के पुनर्मूल्यांकन का शुभारंभ है। आपके संपादन में 'गगनांचल' निश्चय ही 'गगन' को छूने लगा है। साधुवाद।

डॉ. रणवीर रांग्रा, सी-७८०, नवीन निकेतन एस.डी.ए., नई दिल्ली-१६

आधुनिक भारतीय साहित्य की प्रख्यात कवयित्री महादेवी वर्मा ने मृत्यु के संबंध में जो परिकल्पना की थी, वह इस प्रकार थी ''मुझे तो उस लहर की सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक जाकर चुपचाप समुद्र में लौटकर समुद्र बन जाती है।''

और सचमुच ही महादेवी वर्मा की चेतना-लहर विराट प्राण-महासागर में पूर्णरूपेण विलीन हो गई है। जिस दीपशिखा की ज्योति निरंतर निष्काम भाव से जल रही थी वह आज वृहज्ज्योति में अन्तर्विष्ट हो गई है।

त्रैमासिक पत्र '**गगनांचल**' के वर्ष १९८७ के अंक ४ में 'कमल दल पर किरण अंकित' शीर्षक से अन्त:स्फुरित संपादकीय में महादेवी जी की रचना-प्रतिभा के दोनों पक्षों—'शब्द के माध्यम से कविता में और रंग के माध्यम से चित्रकला में'—पर अत्यंत शोध परक भावांजलि समर्पित करते हुए महीयसी महादेवी के महत्वपूर्ण योगदान को इन शब्दों में रेखांकित कर दिया गया है।

''उन्होंने काल की कमल-पंखुड़ी पर सचमुच अपनी चित्रमय मधुर रश्मि स्मृति अंकित कर दी है।''

महादेवी जी की स्मृति में 'अक्षय स्मृति' खंड के अंतर्गत लिखे गये अपने लेखों में अमृतराय, डॉ. नगेंद्र, डॉ. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', डॉ. निर्मला जैन, डॉ. प्रभाकर माचवे तथा डॉ. रामजी पांडेय तथा काव्यांजलि' के अंतर्गत डॉ. जगदीश गुप्त ने महादेवी जी के अतिशय संवेदनशील, गौरवास्पद भव्य व्यक्तित्व और कमनीय कृतित्व के विविध रूपों को आत्मीय, लालित्यपूर्ण एवं भाव पूर्ण शैली में अभिव्यंजित किया है। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी का 'प्रवासी भारतीयों के सांस्कृतिक प्रहरी' स्व. बनारसीदास चतुर्वेदी की पुण्य-स्मृति में लिखा गया लेख अमित प्रेरणा प्रदान करता है। प्रताप सहगल ने अपने रूपक 'अन्वेषक' में प्रसिद्ध भारतीय ज्योतिर्विद आर्यभट्ट के क्रांतिकारी अन्वेषणों की आकर्षक प्रस्तुति की है। गुणाकर मुले का महान भारतीय श्रीनिवास रामानुजन की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में लिखा गया लेख, 'भारतीय गणित की यूरोप-यात्रा', विद्वतापूर्ण, रोचक एवं अनुसंधानात्मक है। इसी प्रकार अंक के अन्य खंड भी बड़े प्रभावी हैं।

'गगनांचल' का ताजा अंक एक मित्र के यहाँ देखने को मिला। पहली नजर में ही पत्रिका ने आकर्षित किया और पढ़ने के लिए उसे मैं ले आया। हिंदी पत्रिकाओं के प्रति जो मेरा भाव बना हुआ था उसे गगनांचल ने तोड़ा है। महादेवी वर्मा पर केंद्रित इस अंक का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्त्व है। आपका संपादकीय महादेवी वर्मा को परंपरागत समीक्षा के कटघरों से मुक्त कर के नयी नजर से देखने को प्रेरित करता है। एक लेखक को उसके पारिवारिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक परिवेश तथा उसके समकालीनों के समकक्ष रख कर उसका आकलन करना समय की जरूरत तो है ही, उसे समझने के लिए भी जरूरी है। शेष सामग्री में भी महादेवी को विभिन्न दृष्टियों से देखने का प्रयास किया गया।

इस अंक की दूसरी विशिष्ट उपलब्धि प्रताप सहगल का नाटक 'अन्वेषक' है। इससे पूर्व मैंने आर्यभट्ट के बारे में इधर-उधर थोड़ा बहुत पढ़ा था, लेकिन इस नाटक ने आर्यभट्ट को देखने, परखने और समझने के लिए एक नया आयाम दिया है। नये अन्वेषणों के लिए संघर्षरत आर्यभट्ट, उसका परिवेश, उसके प्रतिद्वंद्वी, राजाश्रय की परंपरा, इतिहास की उथल-पुथल, पूरी जीवंतता के साथ नाटक में विद्यमान है। भाषा और संवादों की गति एवं स्वाभाविकता दूर तक असर करती है। मेरे विचार से इसे विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाना चाहिये।

इसी तरह से श्रवण कुमार की कहानी 'इति' भी मुझे पसंद आई जहाँ एक संघर्षशील चरित्र अपनी जीवतंता के साथ विद्यमान है। कविताओं में शेरजंग गर्ग की गजलें अच्छी लगी।

ऐसे अंक के लिए आप साधुवाद के पात्र हैं।

रूपलाल शर्मा ३'४४, पंजाबी बाग नई दिल्ली-११००२६.

वैविध्यपूर्ण विषय, ठोस कलेवर, साहित्य एवं संस्कृति से संबद्ध विषयों का विवेकपूर्ण संचयन, आकर्षक प्रस्तुति आदि विशेषताओं के कारण पूरा का पूरा अंक पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

'गगनांचल' को हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में मानक, स्मरणीय रूप में प्रस्तुत करने के लिए हार्दिक बधाई एवं मंगल कामनायें।

डॉ. वीरेंद्र शर्मा ९०९ सेक्टर १२ रामकृष्णापुरम नई दिल्ली-२२.

इस अंक के लेखक

यशपाल जैन
वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार, गाँधीवादी विचारक। विदेशों में भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान। विश्व-भ्रमण में ४२ देशों की यात्राएं। मारीशस, फीजी, सूरीनाम, गयाना, त्रिनीडाड में भारतीय संस्कृति के मान्य व्याख्याकार। कविता, कहानी, एकांकी, आत्मकथा, संस्मरण, निबंध, अनुवाद आदि अनेक विधाओं में ढाई सौ पुस्तकों के प्रणेता। अनेक प्रसिद्ध शिक्षा-संस्थाओं से घनिष्ठ संबंध। गाँधी जी द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए १९२५ में स्थापित सस्ता साहित्य मंडल में १९३७ से कार्यरत। संप्रति मंडल के मंत्री। 'रूस में ४६ दिन' एवं 'सेतु निर्माता' नामक दो पुस्तकों को 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार'।
संपर्क : ७/८ दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

नारायण कुमार
हिंदी लेखक, समीक्षक, अनुवादक। प्रारंभ में बिहार विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग से संबद्ध रहे। फिर 'अन्यथा' (कलकत्ता), 'अधिकरण' और 'दृष्टिकोण' (पटना) पत्रिकाओं के संपादन कार्य से कुछ वर्ष जुडे रहे।
संप्रति : हिंदी अधिकारी, भारतीय उच्चायोग गयाना।

डॉ. रामजी तिवारी
गयाना में हिंदी साहित्य और भारतीय संस्कृति के विद्वान।

के.पी. नारायण
लेखक एवं इतिहासवेत्ता। विदेशों में बसे भारतवंशी लोगों के मुक्ति-आंदोलन पर विशेष अध्ययन।

के.एल. मामनानी
गयाना में भारतीय परंपरा के प्रभाव और सांस्कृतिक अंतरावलंबन के अध्येता।

प्रो. विजयेंद्र स्नातक
हिंदी एवं संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान। राधावल्लभ संप्रदाय के सिद्धांत और साहित्य पर विशेष शोध, जो इस भक्ति आंदोलन का स्रोतग्रंथ हो गया है। प्रख्यात समीक्षक, आलोचक। प्राचीन भारतीय दर्शन, सांस्कृतिक परंपरा, भक्ति आंदोलन विशेष रूप से वैष्णव काव्य के अधिकारी विद्वान। अनेक मानक ग्रंथों के प्रणेता। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा शीर्षस्थ 'संस्थान सम्मान' से समादृत। दिल्ली विश्वविद्यालय के निवृत हिंदी विभागाध्यक्ष।
संपर्क : ई-५/३, राणाप्रताप बाग, नई दिल्ली।

डॉ. रणजीत साहा — हिंदी, संस्कृत, बंगला के विद्वान लेखक। कला, साहित्य, कविता के क्षेत्र में समीक्षात्मक कार्य। वेद, पुराण मिथक तथा भारत की सांस्कृतिक परंपरा के समर्थ अध्येता एवं व्याख्याकार।
संप्रति : सहायक संपादक, साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली।

राजनंदन मिश्र — हिंदी में शोधकार्य एवं अंग्रेजी एवं बांग्ला से अनुवाद पर विशेष कार्य।
संपर्क : ६ एच, राधानाथ रोड, कलकत्ता-७०००१५.

मंजुल भगत — समकालीन हिंदी कथासाहित्य की लेखिका। अब तक प्रकाशित पाँच कथा-संकलन एवं पाँच उपन्यास की प्रणेता जिनमें 'अनारो' उनकी सबसे प्रसिद्ध उपन्यास। इसका कन्नड़ और जर्मन भाषाओं में अनुवाद हो चुका है तथा नाटक के रूप में सफल मंचन भी। एक उपन्यास का अंग्रेजी में 'दि सर्च' नाम से राइटर्स वर्कशॉप कलकत्ता द्वारा हुआ है। 'हिंदी अकादमी दिल्ली तथा यशपाल प्रतिष्ठान' लखनऊ के पुरस्कार से समादृत। अनेक कहानियों के रेडियो नाट्य रूपांतर हो चुके हैं।
संपर्क : १४ रामकिशोर रोड, सिविल लाइंस दिल्ली-११००५४.

डॉ. गंगाप्रसाद विमल — हिंदी में साठोत्तरी लेखकों की पीढ़ी के बहुचर्चित कवि, कथाकार, उपन्यासकार एवं आलोचक। कई देशों की यात्राएँ और वहाँ के साहित्य पर अनुवाद कार्य। इनकी रचनाओं के अनेक विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हो चुके हैं। कई उपन्यास, कथा एवं काव्य संकलन, समीक्षा ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।
संप्रति : रीडर, हिंदी विभाग, जाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली।
संपर्क : ३-ए/११, वेस्टर्न एक्सटेंशन एरिया, करौलबाग, नई दिल्ली-११०००५।

नरेंद्र मोहन — समकालीन पीढ़ी के बहुचर्चित कवि, आलोचक एवं नाटककार। हिंदी में विचार कविता एवं लंबी कविता की विधा पर विशेष अध्ययन।कविताओं एवं समीक्षा के कई ग्रंथों का संपादन। 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' नाटक का सफल मंचन हो चुका है। कविताएँ अंग्रेजी, मराठी, बंगला, पंजाबी भाषाओं में अनूदित ।
संप्रति : हिंदी विभाग, खालसा कॉलेज में हिंदी के वरिष्ठ प्राध्यापक।
संपर्क : २३९-डी, एम.आई.जी. फ्लेट्स, राजौरी गार्डन एक्सटेंशन, नई दिल्ली-११००२७।

रामबिलास शर्मा — हिंदी में आधुनिक धारा के बहुचर्चित हस्ताक्षर। प्रकृति, प्रेम, सौंदर्य एवं ग्राम्य-जीवन की छटाओं के कवि। समीक्षक एवं पत्रकार।
संपर्क : गीतांजली, ३९६ तिलक नगर, इंदौर मध्य प्रदेश-४५२००१।

सुरेश विमल — युवा पीढ़ी के सुपरिचित कवि। ग्रामांचल के जन-जीवन की भावभूमि पर नये बिंब एवं शैली की अनेक रचनाएँ राजस्थान अकादमी जयपुर से समादृत।

संपर्क : द्वारा/भारतीय उच्चायोग बंगला देश, ढाका।

राजी सेठ — हिंदी की आधुनिक चेतना संपन्न नयी पीढ़ी की बहुचर्चित कहानी, उपन्यास लेखिका। तीन कहानी-संकलन एवं दो उपन्यास। इनका बड़ा उपन्यास 'ततसम' भारतीय भाषा परिषद् द्वारा समादृत। कथासाहित्य पर कलकत्ता की 'रचना' संस्था द्वारा पुरस्कार। कविता में बचपन से रुचि। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानी, समीक्षाएँ प्रकाशित। आधुनिक सामाजिक एवं जीवन-मूल्य विषयों पर चिंतन-प्रधान विशेष लेखन। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. तथा धर्म और दर्शन पर गुजरात विद्यापीठ से तुलनात्मक अध्ययन।

संपर्क : एम-१६, साकेत, नई दिल्ली-११००१७।

शीला गुज़राल — हिंदी की सुपरिचित कवयित्री। पालि साहित्य पर विशेष कार्य। तीन कविता-संकलन प्रकाशित। एक अंग्रेजी में अनूदित। अध्यक्ष, लेखिका संघ दिल्ली।

संपर्क : जी-१३ महारानी बाग, नयी दिल्ली।

तारादत्त निर्विरोध — आधुनिक नयी कविता की शैली में संपन्न कवि। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क : १२८२, खेजड़े का रास्ता, जयपुर (राज.)

डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय — हिंदी के सुपरिचित विद्वान। आलोचक, कथाकार। 'प्रेमचंद' पर विशेष अध्ययन। प्राचीन साहित्य एवं भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के गहन अध्येता।

संप्रति : रीडर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, स्नातकोत्तर अध्ययन केंद्र, झरिया (धनबाद)

संपर्क : वृंदावन, राजेंद्र पथ, धनबाद (बिहार)।